सी. एस. आई. आर. तथा डी. बी. टी. नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

विज्ञान

परिषद् की स्थापना : 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन : अप्रैल 1915
वर्ष : 88 अंक : 9
दिसम्बर 2002

मूल्य
दसवार्षिक : 1,000 रुपये
त्रिवार्षिक : 300 रुपये
वार्षिक : 100 रुपये
यह प्रति : 9.00 रुपये

सभापति
डॉ० (श्रीमती) मंजु शर्मा

सम्पादक एवं प्रकाशक
डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

मुद्रक
नागरी प्रेस
91/186, अलोपी बाग, इलाहाबाद
फोन : 502935, 500068

आन्तरिक पृष्ठ व टाइप सेटिंग
शादाब खालिद
79/65, सब्ज़ी मण्डी, इलाहाबाद
फोन : 651264

आवरण
चन्द्रा आर्ट्स
तालाब नवलराय, इलाहाबाद
फोन : 558001

सम्पर्क
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002
फोन : 460001 ई–मेल : vigyan1@sancharnet.in
वेबसाइट : www.webvigyan.com

विषय सूची

ऑप्टिकल प्रोजेक्शन टोमोग्राफी

माइकल बायड

ब्रिटेन में चिकित्सा विज्ञान के शोधकर्ताओं ने मानव देह में झाँककर उसकी तस्वीर उतारने की ऐसी नई तकनीक खोज जी है जो पिछली तकनीकों को बहुत पीछे छोड़ देगी। इसका नाम है 'ऑप्टिकल प्रोजेक्शन टोमोग्राफी' (ओपीटी)।

अभी तो शोधकर्ता इसके इस्तेमाल से चुहियों में जीन–क्रिया देखेंगे, लेकिन भविष्य में इसकी सहायता से संक्रमणग्रस्त ऊतकों की बायोप्सी से रोगों का सही सही निदान किया जा सकेगा।

इस नई तकनीक का सृजन ब्रिटेन की मेडिकल रिसर्च काउंसिल की मानव आनुवांशिकी यूनिट के वैज्ञानिकों ने किया है। यह प्रयोगशाला स्काटलैंड में एडिनबरा में स्थित है। ओपीटी से ऊतकों की हर बारीकी को हर कोण से परखा जा सकेगा।

इस तरह से प्राप्त आँकड़े कंप्यूटर में भर दिए जाते हैं और कंप्यूटर फिर इनके आधार पर ऊतक को फिर से वैसा बना देता है, जैसी कि वह है और इनकी त्रिआयामी छवि कंप्यूटर के परदे पर साकार हो जाती है। पहले किसी भी अंग या ऊतक की त्रिआयामी छवि प्राप्त करने के लिए बहुत बारीक काट की सैकड़ों छवियाँ उतारनी पड़ती थीं।

इस तकनीक से 15 मिलीमीटर के घेरे वाली ऊतक का भी अवलोकन किया जा सकेगा, जबकि इससे पहले की तकनीकें 1 मिलीमीटर घेरे से बड़ी ऊतकों की गहराई में नहीं जा पाती थीं।

जब मानव, चूहे, खरगोश वगैरह स्तनधारी प्राणियों के भ्रूण का परिवर्धन होता है, तो उसकी कोशिकाओं में मौजूद आनुवांशिकी सूचना के आधार पर ही सभी अंग बनते हैं। यह सब एक जटिल प्रक्रिया है, जिसकी बहुत सी जानकारी अभी विज्ञान की पकड़ में नहीं आई। किस तरह पुरखों से मिले जीन संतानों के नाक–नक्श और गुण–दोष निर्धारित करते हैं, यह जानना बड़ा जरूरी है। इसी से पता चलेगा कि भ्रूण आगे चलकर सामान्य शिशु का रूप लेगा या फिर किसी जन्मजात रोग से ग्रस्त या अपंग शिशु का। इससे भ्रूण–विकास की अनेक गुत्थियाँ भी सुलझाई जा सकेंगी।

मानव देह में जीन स्वयं को किस तरह व्यक्त करते हैं, इसकी जानकारी बड़ी जटिल है और वह भारी मात्रा में इकट्ठी होती जा रही है। इस जानकारी को संकलित करना, प्रकाशित करना और फिर से प्राप्त करना बड़ा कठिन कार्य है। एक जीन को दूसरे के साथ क्या संबंध होता है और उनके बीच किस तरह की क्रियाएँ क्या असर दिखाती हैं, यह तुलना करना भी बड़ा टेढ़ा काम है।

संकलन, प्रकाशन तथा ग्रहण के परंपरागत तरीकों से इस समस्या को सुलझाना कठिन है। इसके लिए एक इलेक्ट्रानिक डेटाबेस बनाना होगा। इसके साथ ही जीन की अभिव्यक्ति के किताबी विवरण भी
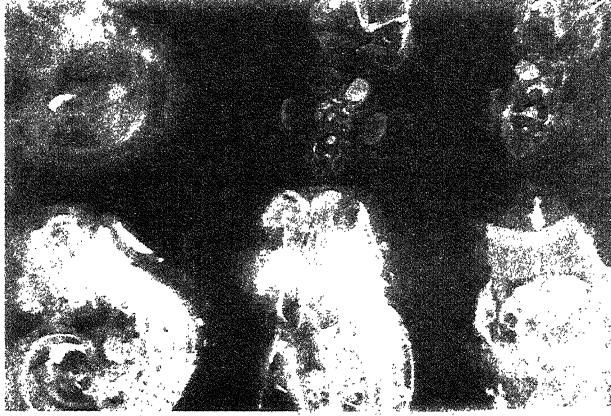
अब उतने उपयोगी नहीं रहे, क्योंकि जीन स्वयं को व्यक्त करने में जरूरी नहीं कि हर बार एक सा व्यवहार करें। यह प्रायः इस पर निर्भर करता है कि वे किस प्राणी में हैं या किस अंग या ऊतक में हैं। इसलिए अमुक जीन अमुक ऊतक या अंग बनाने की प्रक्रिया शुरू करेगा या ठप्प करेगा यह बड़ी जटिल प्रक्रिया है, जिसमें अनेक जीनों की अंतःक्रिया भी जिम्मेदार होती है।

जब ये अंग या भ्रूण परिवर्धन की अत्यंत प्रारंभिक अवस्था में हों, तो उस समय उनके अंदर चल रही जीन क्रियाओं को समझना और भी मुश्किल होता है, जबकि इसी अवस्था में जीनों की पारस्परिक क्रियाओं की बारीकी समझना अधिक महत्व रखता है क्योंकि उसी से पता चलेगा कि वे शारीरिक रचना पर कैसा प्रभाव डालने जा रही हैं। ऐसे प्रयोगों से ही आगे चलकर जन्मजात रोगों तथा विकृतियों के बारे में वैज्ञानिक धारणाएँ प्रतिपादित की जा सकेंगी।

इसके लिए आवश्यक है कि ऊतकों की त्रिआयामी छवियों में ही उनके अंदर मौजूद वंशाणुओं की क्रियाओं की भी झलक मिल जाए, ताकि दोनों का आपसी संबंध चित्रांकित किया जा सके।

एमआरसी (मेडिकल रिसर्च काउन्सिल) की इस मानव आनुवांशिक यूनिट में शोधकार्य में संलग्न डाक्टर जेम्स शार्प ने बताया, "मानव जीनकोष परियोजना सफलतापूर्वक पूरी हो गई है और हजारों जीनों की पहचान कर ली गई है। अब सबसे बड़ी चुनौती है यह मालूम करना कि ये जीन क्या करते हैं, स्वास्थ्य तथा रोगों से इनका क्या संबंध है ?

इस समय पूरी दुनिया में वैज्ञानिक मानव जीनों की क्रियाओं को जानने में लगे हैं कि कौन सा जीन कौन सा काम करता है और इसका पहला कदम यही जानना है कि वह जीन कहाँ सक्रिय है। चुहियों में इस जीन क्रिया को जानना आसान है और बाद में ऐसी ही जीन क्रियाएँ मनुष्य में खोजी जा सकेंगी। आगे उन्होंने बताया, ओपीटी पर खर्च बहुत कम आता है, इसलिए आशा है कि मानव जीनकोष के सभी जीनों के बारे में यह जानकारी इस तकनीक का उपयोग करके इकट्ठी की जा सकेगी। यह वैज्ञानिकों के लिए ज्ञान का अमूल्य कोष सिद्ध होगा और पूरे मानव जीनोम का 'त्रिआयामी मानचित्र' बनाया जा सकेगा। वह यह बताएगा कि कौन सा जीन देह में कहाँ और किस ऊतक में सक्रिय रहता है। इस तरह यह स्वयं मानव जीनोम की खोज से तुलनीय एक नई महत्वपूर्ण खोज होगी जो विश्व के सभी वैज्ञानिकों को उपलब्ध रहेगी।

इस शोधकार्य में एमआरसी ह्यूमन जेनेटिक्स यूनिट के डाक्टर डेविड डेविडसन और डाक्टर रिचर्ड बालकोड तथा एडिनबरा यूनिवर्सिटी के एनाटॉमी विभाग के प्रोफेसर एम.एच. कॉफमैन और डाक्टर जे.बी.एल. बार्ड भी सहयोग कर रहे हैं। ये लोग मिलकर चूहे में जीन–अभिव्यक्ति का त्रिआयामी डेटाबेस बना रहे हैं। यह एक एटलस के रूप में होगा।

कॉफमैन की किताब 'द एटलस आफ माउस डेवेलपमेंट' एकेडमिक प्रेस, लंदन से प्रकाशित हो चुकी है। इसमें चूहे के जो भ्रूण इस्तेमाल किए गए थे, उनके ही ऊतकों की काट इस त्रिआयामी एटलस में भी इस्तेमाल की जाएगी। इस तरह भ्रूण के विकास का हर दैनिक परिवर्तन यहां त्रिआयामी छवियों के द्वारा स्पष्ट होगा और उसका मेल विविध जीनों से किया जाएगा।

चूहों के अधिकतर जीन वैसे ही क्रियाएं करते हैं जैसे कि आदमी के जीन। इस तरह इस अनुसंधान से मानव के संबंधित जीन मालूम करके कैंसर, हृदय–विकार तथा मधुमेह जैसे रोगों से जुड़े जीन मालूम किए जा सकेंगे। इस एटलस में जीनों की अभिव्यक्ति आलेख और चित्र दोनों तरह से व्यक्त की जाएगी।

चूहे के सभी 30,000 जीनों के बारे में यह डेटाबेस बताएगा कि भ्रूण परिवर्तन के दौरान कहाँ–कहाँ किस तरह सक्रिय होते हैं। परिवर्धन के प्रत्येक चरण की शरीर संबंधी शब्दावली का मानकीकरण कर लिया गया है, जिससे हर चरण व्याख्यायित हो जाता है, यह पूरी सूचना डेटाबेस के रूप में इंटरनेट पर उपलब्ध रहेगी।

'ब्रिटिश समीक्षा' से साभार

झीलें : पृथ्वी से चन्द्रमा तक

इरफान ह्यूमन

झील का नाम सामने आते ही आँखों के सामने कई मनमोहक दृश्य घूम जाते हैं। आखिर झीलें किसे नहीं भातीं। नाव में बैठकर झीलों की सैर का मजा अपने में बड़ा ही आनन्ददायक है, लेकिन कुछ झीलें इतनी लम्बी होती हैं कि उनमें पानी के जहाज़ तक चलते हैं। झीलों का शान्त जल अपने में एक लम्बी कहानी समेटे होता है। भला कैसे आती है : अस्तित्व में झीलें ? इसका सजीव वर्णन पढ़ें इस लेख में।

– सम्पादक

चारों ओर पहाड़ियों से घिरा ऐसा गड्ढा, जहाँ से पानी की निकासी सम्भव न हो, पानी भरते रहने से झील में परिवर्तित हो जाता है। ग्लेशियर के कारण बने गड्ढों में जब पिघली हुई बर्फ और वर्षा का पानी भर जाता है तो झील बन जाती है। कभी–कभी जब ज्वालामुखी पर्वत ठण्डा होने लगता है तो ज्वालामुखी के गड्ढों में पानी जमा होने लगता है और झील का निर्माण हो जाता है। वैज्ञानिकों ने दक्षिणी ध्रुव में करोड़ों वर्ष से 3350 मीटर नीचे बर्फ में सुरक्षित वोस्तोक झील का पता लगाया है जो स्विट्जरलैंड और फ्रांस की सीमा पर स्थित जिनेवा झील से पच्चीस गुना बड़ी है। लगभग 500 मीटर गहरी इस झील का क्षेत्रफल 14000 किलोमीटर है।

झीलें पृथ्वी की सतह पर ही नहीं बल्कि धरती के अन्दर भी होती हैं। सन् 1905 में ऐसी ही एक विचित्र झील की खोज की गई जो अमेरिका में स्थित है। जमीन के अन्दर 51 मीटर नीचे स्थित अज्ञात सागर (Lost Sea) नामक झील विश्व की सबसे बड़ी भूमिगत झील है। झील के अन्दर भी झील– इस पर सहजता से विश्वास नहीं होता, लेकिन यह सच है। कनाडा के झील टापू नीटूलिन में स्थित मेनीटू नामक एक ऐसी ही विचित्र झील है जो एक झील के अन्दर स्थित है।

दुनिया की सबसे बड़ी झील रूस और ईरान के बीच स्थित कैस्पियन सागर है, जिसका कुल क्षेत्रफल 394299 वर्ग किलोमीटर है। इस झील की लम्बाई 1199 किलोमीटर और गहराई 946 मीटर है। ईरान के लोग इस झील को 'दरिया ए खजर' कहते हैं। कैस्पियन सागर का पानी खारा है। यदि दुनिया की सबसे गहरी झील की बात की जाए तो वह है साइबेरिया की बैकाल नामक झील। 31500 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाली इस झील की अधिकतम गहराई 1741 मीटर है। दक्षिण अमेरिका में टिटिकाका झील को दुनिया की सबसे ऊँची झील होने का गौरव प्राप्त है। यह झील समुद्र तल से 3811 मीटर ऊँचाई पर स्थित है।

झीलों के पानी का अध्ययन करने से पता चलता है जिन झीलों का पानी स्थिर रहता है अर्थात् जिनसे पानी निकल नहीं पाता, ज्यादातर उन झीलों का पानी खारा होता है। इसके विपरीत जिन झीलों में नदियों के गिरने से पानी का प्रवाह होता रहता है वे मीठे पानी की झीलें होती हैं। उत्तरी अमेरिका और कनाडा के बीच स्थित बड़ी झीलों में से सुपीरियर नामक झील एक ऐसी झील है जिसकी सतह का क्षेत्रफल मीठे पानी की तमाम झीलों में सर्वाधिक है। 406 मीटर गहरी इस झील का क्षेत्रफल 82414 वर्ग किलोमीटर है।

आज जहाँ धरती पर हर तरफ पर्यावरण प्रदूषण का संकट गहराता जा रहा है वहीं झीलें भी इससे अछूती नहीं हैं। इंटरनेशनल सेंटर फार रिसर्च एण्ड एग्रोफारेस्ट्री के डॉ० मार्कर वाल्श का मानना है कि विक्टोरिया झील, जो तीन करोड़ लोगों की आजीविका का साधन है, बड़े पैमाने पर प्रदूषण के कारण संकट में है। परिणामस्वरूप दिन प्रतिदिन यहाँ मछलियों की संख्या कम होती जा रही है। इस झील में प्रदूषण का जो सबसे बड़ा असर दिख रहा है, वह है यहाँ के पानी

में तीव्रता से फैलती जलकुम्भी। इस जलकुम्भी से जहाँ एक ओर यातायात में बाधा पड़ रही है वहीं झील में मछलियों पर भी असर पड़ रहा है। जलकुम्भी को हटाना एक चुनौती है। वैज्ञानिक इस मामले में झील के पानी में नाइट्रोजन और फास्फोरस की अत्यधिक मात्रा को जिम्मेदार मान रहे हैं। पर्यावरणविदों ने विक्टोरिया झील में प्रदूषण के अलग–अलग कारणों को ढूँढने का कार्यक्रम शुरू कर दिया है। हाल ही में उपग्रह के माध्यम से झील के किनारों पर मिट्टी के जमाव का अध्ययन कर रहे वैज्ञानिकों ने नाइट्रोजन और फास्फोरस के विशाल जमाव को देखा है।

आकाश से गिरने वाली उल्काओं ने भी पृथ्वी पर झीलों के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। क्यूबेक की उनगावा झील जैसे कई स्थान हैं जहाँ उल्का पिंड गिरने से गड्ढे बन गए, तत्पश्चात् उनमें पानी भरने से झीलें बन गईं हैं।

अब यह सोचना गलत होगा कि यदि चन्द्रमा पर पानी होता तो वहाँ दिखाई पड़ने वाले विशाल क्रेटर, जो उल्कापात से बने हैं, आज विशाल झीलों का रूप लिए होते। अब चन्द्रमा पर पानी को लेकर एक चौंकाने वाला तथ्य सामने आया है। नासा के वैज्ञानिकों द्वारा छोड़े गए ल्यूनर प्रोस्पेक्टर नामक चन्द्रयान से जो चित्र मिले उनसे ज्ञात हुआ है कि चन्द्रमा पर लगभग तीस लाख टन पानी मौजूद है। ल्यूनर प्रोस्पेक्टर रोबोट से मिले आँकड़ें में कई छायादार गड्ढों में बर्फ की परत दिखाई दी। बर्फ चन्द्रमा के ध्रुवीय क्षेत्रों में हजार वर्ग किलोमीटर में दूर–दूर तक फैली हुई है अतः चन्द्रमा पर बर्फीली झीलों के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता है।

ल्यूनर प्रोस्पेक्टर यान से संबद्ध खोज अभियान दल के मुख्य शोधकर्ता डॉ0 एलन बाइन्डर के अनुसार चन्द्रमा के अन्दर या बाहर अपना पानी नहीं है। अब प्रश्न यह उठता है कि चन्द्रमा पर पानी आया तो कहाँ से ? इस विषय में डॉ0 बाइन्डर का मानना है कि लगभग चार लाख वर्षों से लाखों–करोड़ों उल्का पिण्डों की बमबारी से चन्द्रमा पर पानी इकट्ठा हो गया, जो ध्रुवीय क्षेत्रों पर पहुँच कर जम गया।

ल्यूनर प्रोस्पेक्टर पर लगाए गए न्यूट्रान स्पेक्ट्रोमीटर नामक यन्त्र से चाँद पर पानी का पता लगाने में सहायता मिली है। न्यूट्रान स्पेक्ट्रोमीटर के परिणामों के विश्लेषक डॉ0 विलियम फ्लेडमैन के अनुसार चन्द्रमा से प्राप्त प्रारम्भिक आँकड़ों से स्पष्ट है कि वहाँ पानी की पर्याप्त मात्रा है जिससे वहाँ मानवीय बस्तियाँ बनाने की योजना के साकार होने की पूर्ण संभावना है। अब अंतरिक्षयात्रियों के लिए चन्द्रमा पर पड़ाव के समय पानी और आक्सीजन की समस्या समाप्त हो जाएगी और राकेट का ईंधन भी यहीं से प्राप्त किया जा सकेगा।

चन्द्रमा पर ज्वालामुखी क्रेटर, जिन्हें झीलें कहना उचित होगा, इतने ठण्डे रहते हैं कि यहाँ से वाष्पीकरण संभव नहीं हो सकेगा। दरअसल चन्द्रमा के ये ध्रुव हमेशा सूर्य से ओझल रहते हैं क्योंकि सूर्य चन्द्रमा के अक्षांश से 11.2 डिग्री से अधिक विचलित नहीं होता। सूर्य से ओझल होने के कारण ध्रुवों का ताप काफी कम, लगभग –230 डिग्री सेल्सियस रहता है, यही कारण है कि चन्द्रमा के इन उल्कापिंडों के टकराव से जो पानी व बर्फ आया होगा वह अतिनिम्न ताप होने के कारण वहाँ हमेशा कैद होकर रह गया और उसने बर्फीली झीलों का रूप ले लिया।

संपादक

साइंस टाइम्स न्यूज एंड व्यूज रिसर्च

67 कन्टा, निकट मोहनी स्कूल

शाहजहाँपुर–242 001

भारत के प्रसिद्ध अस्थि शल्य चिकित्सक और 'विज्ञान' पत्रिका के लेखक डॉ0 आर0 सी0 गुप्ता को इस वर्ष का राष्ट्रीय धन्वंतरि सम्मान दिया गया। यह सम्मान चिकित्सा शास्त्र की विभिन्न विधाओं और सामाजिक क्षेत्र में कार्य करने के लिए प्रति वर्ष प्रदान किए जाते हैं। इस वर्ष उनके अतिरिक्त चिकित्सा की अन्य विधाओं के लिए तीन अन्य चिकित्सकों को यह सम्मान दिया गया।

– सम्पादक
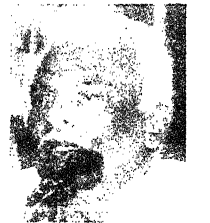
रोगनिवारक टीकों के प्रयोग से जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उत्साहजनक परिणाम मिले हैं। नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय रोग प्रतिरक्षण संस्थान, हिसार स्थित राष्ट्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान और करनाल स्थित डेयरी अनुसंधान संस्थान में भ्रूण स्थानांतरण परियोजनाओं के उपयुक्त परिणाम मिले हैं। मुर्गियों की रानीखेत बीमारी और मवेशियों के संक्रामक बोवाइन राइनोट्रेकिएटिस के टीकों का विकास कर उसकी वाणिज्यिक आधार पर बिक्री की जा रही है।

जैव प्रौद्योगिकी द्वारा तपेदिक, मलेरिया, फीलपाँव, हैजा, हेपेटाइटिस, विषाणु कैंसर, आनुवांशिक दोषों आदि संक्रामक व गैर–संक्रामक रोगों के निवारण के लिए रोग–प्रतिरोधी चिकित्सा विज्ञान और तंत्रिका विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास पर ध्यान केन्द्रित किया गया है तथा बहुत से रोगों के निवारण में भी सफलता मिली है। भारत में एड्स रोग, मलेरिया, हृदय रोग, हीमोफीलिया, एन्थ्रेक्स आदि के टीकों के निर्माण में जीन अभियांत्रिकी प्रौद्योगिकी अनुसंधानरत है। जीन अभियांत्रिक तकनीक से विकसित टिश्यूप्लाज्माइनोजेन एक्टीवेटर का सफलतापूर्वक प्रयोग करके हृदय की धमनियों में रक्त के थक्के को विघटित करने में सफलता प्राप्त की है।

अब कुष्ठ रोग के लिए एक चिकित्सकीय इम्यूनोमाडुलेटर लेपरोवैक के रूप में बाजार में उपलब्ध है। बिना किसी दुष्प्रभाव के मानवों में आनुवांशिक रूप से संशोधित कालरा टीके ने चरण–1 चिकित्सकीय जाँचें पूरी कर ली हैं। महिलाओं में जनन क्षमता का नियंत्रण करने के लिए जनन क्षमतारोधी टीके को अपेक्षानुसार विशिष्ट एंटीबॉडीज का उत्पादन करने वाला पाया गया है। अभी हाल ही में पुरुषों के लिए गर्भनिरोधक आर.आई.एस.यू.जी. (रिवर्सिबल इनहिबिशन आफ स्पर्म अंडर गाइडेंस) नामक दवा विकसित की गई है जो इन्जेक्शन के माध्यम से दी जाती है। इसे भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान में बायोमेडिकल इंजीनियरिंग के प्राध्यापक डॉ0 सुजोय के. गुहा ने दिल्ली स्थित अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) के साथ मिलकर 25 वर्षों के अनुसंधान से तैयार किया है। आर. आई.एस.यू.जी. फिलहाल भारत में मनुष्यों में परीक्षण के अंतिम दौर से गुजर रही है और उम्मीद है कि सन् 2003 तक यह इस्तेमाल के लिए उपलब्ध हो जाएगी। यह दवा दो यौगिकों स्टिरिन मेलिक एनहाइड्राइड (एसएमए) और डाइमिथाइल सल्फाक्साइड से मिलकर बनी है। क्षय रोग (माइक्रोबियम ट्यूबरकुलोसिस) के लिए जीन के संबंध में एक पुनर्योगज बी.बी.सी. का विकास किया गया है। मलेरिया के लिए पुनर्योगज प्रोटीन और पेप्टाइड आधारित कैंडिडेट टीकों के संबंध में चिकित्सकीय जाँच की प्रतीक्षा की जा रही है। हेपेटाइटिस 'ए' विषाणु हारमोनों का पता लगाने के लिए मूत्र आधारित एलिरया प्रणालियों जैसी 14 नैदानिक प्रौद्योगिकियों का मानकीकरण किया गया है। एच.आई.वी. के लिए आई.जी.एम. आधारित जाँच प्रणाली और चार प्रजनन हारमोनों का पता लगाने के लिए विकसित दो नैदानिक जाँच प्रणालियाँ उद्योग को हस्तांतरित की गई हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मनुष्यों के कल्याण के लिए जैव प्रौद्योगिकी एवं जैव प्रौद्योगिकी विभाग तथा इस क्षेत्र से सम्बंधित वैज्ञानिक सार्थक प्रयोग कर रहे हैं तथा इसके सार्थक परिणाम आ रहे हैं एवं भविष्य में और भी सार्थक परिणाम आने की संभावना है। जैव प्रौद्योगिकी का प्रयोग हर क्षेत्र में हो

शेष पृष्ठ 9 पर

एक बहुपयोगी घास

कुसुम लता पाण्डेय
भुवनेश कुमार
नरेन्द्र कुमार

पिरिया हलीम का अंग्रेजी नाम Water Cress है तथा इसका वानस्पतिक नाम Nasturtium Officinale है। यह एक प्रकार की घास है जो मूलतः पश्चिमी एशिया, यूरोप, अमेरिका तथा उत्तरी अफ्रीका में पाई जाती है। इसका पौधा कोमल, बहुशाखित, बहुवर्षीय, तथा पानी के निकट तैरने वाला होता है। सामान्यतः यह गड्ढों, कुण्डों, तालाबों, नालों तथा छोटी–छोटी नदियों के किनारे पर पानी में तैरता हुआ पाया जाता है। यह पौधा लगभग 2100 मीटर की ऊँचाई तक सफलतापूर्वक उगता पाया गया है।

उत्तरांचल राज्य के पहाड़ी क्षेत्रों में पिरिया हलीम या जलकुम्भी भरपूर मात्रा में उगता है। अल्मोड़ा जिले में इस घास को मछई और पिथौरागढ़ जिले में इसे खोलिया घास आदि स्थानीय नामों से जाना जाता है। इन जिलों में वहाँ के स्थानीय लोग सब्जी के रूप में इस घास का उपयोग करते हैं। इस घास का स्वाद पालक से मिलता जुलता है। इंग्लैंड व अमेरिका में लोग जलकुम्भी को अधिकतर सलाद के रूप में उपयोग करते हैं। जलकुम्भी को अधिक मात्रा में उगाने के लिए क्यारियाँ तैयार की जाती हैं जिनमें लगातार स्वच्छ जल बहता रहे क्योंकि यह ठहरे हुए जल में अपनी वृद्धि नहीं करता है। जलकुम्भी के बीजों को इकट्ठा कर इसे क्यारियों में बो दिया जाता है। यह घास कटिंग द्वारा भी लगाई जाती है। लगातार भरपूर पानी मिलने पर यह घास बहुत जल्दी बढ़ने लगती है।

पोषक अवयव	प्राप्त पोषक अवयव, हरी घास में (प्रतिशत)
आर्द्रता	90.05
प्रोटीन	2.045
वसा (ईथर निष्कर्ष)	0.27
कार्बोहाइड्रेट	5.13
खनिज पदार्थ	2.23
कैल्शियम	29.5 मिग्रा0 / 100ग्राम
फॉस्फोरस	14.5 मिग्रा0 / 100ग्राम

पिरिया हलीम घास में बहुत से गुणों की भरमार है। इसमें प्रतिस्कर्वी (एन्टीस्कर्ब्यूटिक) और उद्दीपक (स्टिमुलेन्ट) गुण भी पाए जाते हैं। यदि इस घास का भोजन में प्रयोग किया जाए तो यह भूख बढ़ाने में सहायक होती है। जलकुम्भी में विटामिन और खनिज लवण भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं। इस घास में विटामिन 'ए' और विटामिन 'ई' पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहते हैं। यदि जलकुम्भी का उपयोग सलाद के रूप में किया जाए तो इससे विटामिन 'सी' भी भरपूर मात्रा में प्राप्त होता है।

जलकुम्भी की औषधीय उपयोगिता

जलकुम्भी का औषधि के रूप में उपयोग बहुत लाभदायक होता है। कुछ प्रमुख उपयोग निम्नवत् हैं :–

1. जलकुम्भी में लोहा, गन्धक, आयोडीन और मैंगनीज प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। आयोडीन की कमी से गले में गलगण्ड (गॉयटर) हो जाता है। जलकुम्भी का लगातार उपयोग करने पर गॉयटर ठीक हो जाता है।

2. यह शुष्क गले, दमा, सर्दी आदि बीमारियों

को दूर करने में सहायक है।

3. जलकुम्भी गुर्दों (किडनी) की बीमारी में बहुत लाभदायक है इसके सेवन से मूत्र कृच्छ में बहुत लाभ मिलते हैं।

4 जलकुम्भी में विटामिन 'ई' व विटामिन 'ए' बहुतायत में मिलता है। इसकी सलाद व सब्जी बनाकर खाने से शरीर में विटामिन की कमी को पूरा किया जा सकता है।

5. जलकुम्भी में ज़ीवाणुरोधी गुण पाए जाते हैं। इसके लगातार सेवन से जीवाणुओं द्वारा फैलने वाली बीमारियों को रोका जा सकता है।

6. जलकुम्भी के पौधे का काढ़ा बनाकर सेवन करने से रक्त साफ होता है तथा इसमें कृमिनाशक गुण भी पाए जाते हैं।

7. तपेदिक के रोगी को जलकुम्भी खिलाने से धीरे धीरे आराम मिलता है।

8. किसी भी प्रकार के सिर दर्द में इसका उपयोग लाभकारी सिद्ध होता है।

जलकुम्भी की पोषकता

जलकुम्भी का रासायनिक विश्लेषण करने पर प्राप्त पोषक तत्वों को तालिका में दर्शाया गया है।

इस तालिका में दर्शाए गए पौषक अवयवों के अतिरिक्त जलकुम्भी में लोहा, गन्धक, आयोडीन और मैंगनीज काफी मात्रा में पाए जाते हैं। इसमें उत्तम गुणों वाला प्रोटीन रहता है जिसमें सभी आवश्यक ऐमीनो एसिड विद्यमान रहते हैं। जलकुम्भी की पोषकता को देखते हुए रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला पिथौरागढ़, उत्तरांचल में ब्रायलर मुर्गियों के चूजों को जलकुम्भी, मुर्गी दाने के साथ खिलाकर उनकी बढ़ोत्तरी पर एक प्रयोग किया गया।

इस प्रयोग में प्रतिदिन प्रयोगशाला के निकट बहती हुई रई नदी के किनारे उगी हुई ताजा जलकुम्भी घास लेकर उसको सब्जी की भांति काट कर मुर्गी दाने के साथ मिलाकर 6 सप्ताह तक ब्रायलर मुर्गी के चूजों को खिलाकर उनके भार बढ़ने की दर पर परीक्षण किया गया।

परीक्षण

ब्रायलर मुर्गियों के एक दिन के चूजे लिए गए और उनको चार समूहों (क,ख,ग,घ) में बाँट दिया गया। प्रत्येक समूह में चूजों की संख्या 100 रखी गई। समूह क के चूजों को 2:1 के अनुपात से (दो भाग दाना और एक भाग कटी हुई जलकुम्भी घास), इसी प्रकार समूह ख के चूजों को 1:1 के अनुपात से (एक भाग दाना और एक भाग कटी हुई जलकुम्भी), समूह ग को 1:2 के अनुपात से (एक भाग दाना और 2 भाग जलकुम्भी घास) प्रतिदिन तोल कर अलग–अलग दाने के बर्तनों में खिलाया गया। समूह घ को जाँच के लिए कंट्रोल ग्रुप में रखा गया। इस समूह के चूजों को केवल मुर्गीदाना (100 प्रतिशत) ही खिलाया गया। इस प्रयोग को 6 सप्ताह तक तीन बार दोहराया गया। इस प्रयोग द्वारा प्राप्त परिणाम तालिका 2 में दर्शाए गए हैं।

निष्कर्ष

6 सप्ताह के पश्चात् प्रत्येक समूह के ब्रायलर मुर्गियों को तोलने के उपरान्त देखा गया कि समूह क की मुर्गियों को भार में सबसे अधिक वृद्धि (1235 ग्राम) हुई। तत्पश्चात् समूह घ कन्ट्रोल चूजों में (1175 ग्राम) उसके पश्चात् समूह ख में जिनको 1:1 के अनुपात से दाना व घास दी गई थी उनके भार में वृद्धि (1155 ग्राम) हुई। समूह क व समूह घ (कन्ट्रोल) में लगभग मुर्गियों का भार बराबर रहा। इसी प्रकार मुर्गियों की मृत्यु दर समूह क व घ में 5 प्रतिशत, समूह ख में 10 प्रतिशत व समूह ग में 20 प्रतिशत रही। इस प्रयोग से यह निष्कर्ष निकला कि जलकुम्भी घास भूख बढ़ाने

ब्रायलर चूजों को मुर्गी दाने के साथ जलकुम्भी खिलाने से ब्रायलर चूजों के भार में प्रभाव

चूजों का समूह	चूजों की संख्या	एक दिन के चूजों का भार (ग्राम)	दाना तथा जलकुम्भी का अनुपात	6 सप्ताह उम्र पर मुर्गियों का भार (ग्राम)	जीवित ब्रायलर चूजे (प्रतिशत)
क	100	40	2 : 1	1235	95
ख	100	42	1 : 1	1155	90
ग	100	42	1 : 2	1035	80
घ (कंट्रोल)	100	41	100 % दाना	1175	95

वाले गुणों के साथ–साथ पोषक तत्वों, खनिज लवणों, विटामिन का प्रचुर मात्रा में पाया जाना तथा कीटाणुनाशक व कृमिनाशक गुणों के कारण मृत्यु दर को कम करने में सहायक है। मुर्गियों को 2:1 अनुपात में दाना व जलकुम्भी खिलाने से एक तिहाई मुर्गीदाने की बचत होती है और मृत्युदर को भी कम किया जा सकता है।

सबसे अधिक लाभ जलकुम्भी का यह है कि इस घास को खरीदने के लिए धन खर्च नहीं होता। आसपास के नदी, नालों के किनारों से यह बहुउपयोगी घास प्राप्त हो जाती है। इस जलकुम्भी का उपयोग मनुष्य एवं सभी प्रकार के पशु व पक्षियों के लिए किया जा सकता है।

रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला
पिथौरागढ़–262501 (उत्तरांचल)

पृष्ठ 6 का शेष

रहा है लेकिन इसका मुख्य क्षेत्र कृषि एवं चिकित्सा में है। मनुष्यों के कल्याण के लिए जैव प्रौद्योगिकी विभाग ने अनेक योजनाएँ आरंभ की हैं जैसे– वर्मीकम्पोस्टिंग, गाँवों के अपशिष्टों की कम्पोस्टिंग, आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पादपों की उन्नत किस्म की खेती, स्पाइरुलाइना मशरूम आदि को प्रतिदिन के आहार में सम्मिलित करके पोषक अनुरूपक तैयार करना, खाद्य प्रसंस्करण, जलकृषि तथा रेशमकीट पालन, मुर्गीपालन, औषधीय पादपों की खेती और सुगंधित तेल तथा जड़ी बूटी के उत्पादन का प्रसंस्करण, जैव उर्वरक एवं जैव कीटनाशकों का अनुप्रयोग, बंजर भूमि का प्रबंधन, आनुवांशिक विकृति का पता लगाना तथा इसके लिए परामर्श उपलब्ध करना, विभिन्न प्रमाणित जैव प्रौद्योगिकीय नए अनुसंधानों के प्रयोग के माध्यम से समाज के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान करना आदि। इसके साथ–साथ कृषि में जैव प्रौद्योगिकी के विकास के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली की विभिन्न केंद्रीय प्रयोगशालाएँ भी इस क्षेत्र में सराहनीय कार्य कर रही हैं। चेन्नई में जैव प्रौद्योगिकी विभाग ने महिला जैव प्रौद्योगिकी पार्क की स्थापना की है। इसका उद्देश्य व्यावसायिक उद्देश्य से योग्य महिलाओं के लिए पर्यावरण–अनुकूल जैव प्रौद्योगिकीय उद्यमियों के संगठन के द्वारा लाभकारी स्वतः रोजगार को कैरियर के रूप में अपना कर अवसर प्रदान करना है। यह प्रौद्योगिकी पार्क संसाधन, प्रशिक्षण और विपणन के लिए केन्द्रीय सुविधाएँ प्रदान करता है। इसके साथ–साथ जैव प्रौद्योगिकी विभाग ने जैवग्राम की स्थापना भी की है। इसके अन्तर्गत उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करके विशेष स्थान के लिए एकीकृत रूप में जैव प्रौद्योगिकीय प्रक्रियाओं के लिए एक कार्यक्रम का विकास किया गया है और लागू भी किया गया है। गुजरात में पोरबंदर के निकट मौचा और गोरसर में एक जैवग्राम कार्यशील हो गया है।

* उपनिदेशक
** कनिष्ठ वैज्ञानिक
बायोवेद शोध एवं प्रसार केन्द्र
103/42, मोती लाल नेहरू मार्ग
इलाहाबाद–211004

सूचना प्रौद्योगिकी प्रवर्तित सेवाएँ

प्रो0 के.के. भूटानी

सूचना प्रौद्योगिकी का तात्पर्य सूचनाओं का संसाधन, सूचनाओं का भंडारण, सूचनाओं के आदान–प्रदान से है। आज के वैज्ञानिक और तकनीकी युग में सूचना प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण स्थान है। इस विषय के साथ कई अन्य तकनीकी साधनों का संगम हुआ है एवं हमारे जीवन में भिन्न–भिन्न प्रकार के साधन उपलब्ध हुए हैं जो तकनीकी संगम की देन हैं।

कम्प्यूटर एवं संचार सूचना प्रौद्योगिकी के दो मुख्य अंग हैं। दिन प्रतिदिन सूचना प्रौद्योगिकी सभी प्रकार के पहलुओं में अपना योगदान करते हुए कई नए रूपों में विकसित हो गई है और इसके द्वारा अनेक तंत्र तथा उपकरण विकसित किए जा चुके हैं। चाहे विज्ञान हो, अथवा तकनीकी, वाणिज्य हो या व्यवसाय के माध्यम, सभी में सूचना प्रौद्योगिकी नए ज्ञान का स्रोत बनकर अति आवश्यक प्रारूप में हमारे समक्ष उपलब्ध हो रही है। इसका मूल ज्ञान उतना ही आवश्यक है जितना हम सब के लिए टी.वी., सी.डी. प्लेयर, सेल फोन आदि का।

Fig. 1. Technology Upgradation & Enhancement (DIGITAL WORLD)

सूचना प्रौद्योगिकी का विकास

गत कुछ दशकों में कम्प्यूटर का पदार्पण तथा प्रसार हम सबके जीवन में अत्यधिक तीव्रता से हुआ है। हमारे बहुत से कार्य जो साधारणतया कठिन माने जाते थे, वे कम्प्यूटर की सहायता से बड़ी सरलता से हो जाते हैं। जैसे–जैसे कम्प्यूटर का आकार छोटा होना शुरू हुआ एवं इसके मूल्य में कमी आई, इसके उपयोग द्रुत गति से बढ़ने प्रारम्भ हुए। इसी के समानान्तर संचार तकनीकी में भी परिवर्तन आया क्योंकि संचार विधि भी अंकीय रूप में उपलब्ध हुई। दोनों का विलय हुआ। इस मिश्रण से दोनों की उपलब्धियों में एक परिवर्तन उभरा और यह **सूचना प्रौद्योगिकी** के नाम से पूरे संसार में फैल गया। समय के साथ इस नए दायरे में कई अन्य विज्ञान जुड़ गए। यही नहीं, इसमें वाणिज्य और व्यवसाय का बहुत सुन्दर समावेश हुआ। इसके फलस्वरूप पूरे

Fig. 2. FROM DATA TO WISDOM
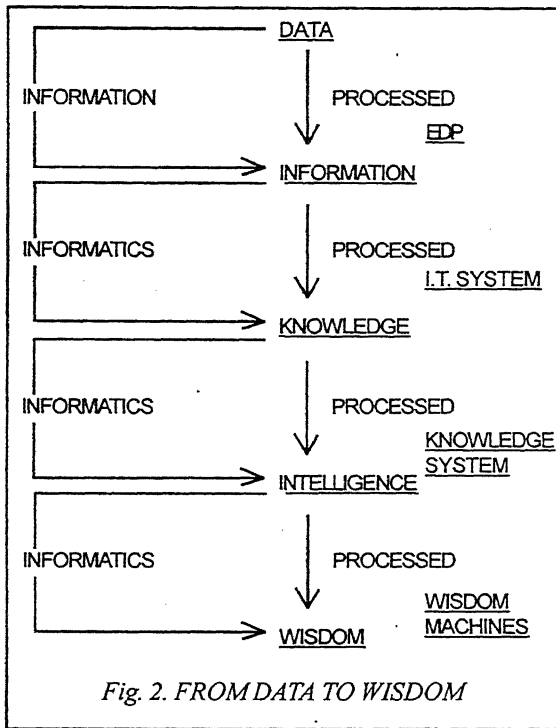
संसार में कई नई दिशाएँ उभर कर सामने आईं। उदाहरण के लिए इन्टरनेट, ई–कामर्स, ई–लर्निंग, बायोमैट्रिक्स, बायोइनफार्मेटिक्स आदि। चित्र 1 में विभिन्न प्रकार के संगमों से उभरे नए ज्ञान–स्रोतों को दिखाया गया है।

यह एक पुरानी कहावत है– 'एक और एक ग्यारह'। जब दो या दो से अधिक तंत्र एक दूसरे में समाहित हो जाते हैं तो इसमें नई शक्ति उत्पन्न होती है। इस नई शक्ति के द्वारा भिन्न–भिन्न प्रकार के नए उपयोग विकसित हो जाते हैं एवं नए स्वरूप में हमें प्राप्त होते हैं। ये हमें ज्ञान की एक नई दिशा देते हैं। इनकी सहायता से हम कम धन व्यय करके अधिक उपयोगी साधन उपलब्ध करा लेते हैं जो मनुष्य मात्र के लिए अत्यधिक लाभकारी सिद्ध होते हैं। आज के युग का विज्ञान इन बढ़ते हुए नए चरणों का ज्वलंत उदाहरण है।

कम्प्यूटर, आई.टी., आई.ई.सी., एस.आई आदि नए विकसित तंत्र हैं।

चित्र 1 में कम्प्यूटर संसाधन के कई अन्य प्रकार के तथ्यों को नए रूप में विकसित कर नई नाम पद्धति द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

कम्प्यूटर के नए स्वरूप

कम्प्यूटर में बहुत तीव्र गति से बदलाव आता है। कुछ ही वर्षों में इसकी तकनीकें बदल जाती हैं और कम्प्यूटर नए स्वरूप में हमारे समक्ष उपस्थित होता है। कम्प्यूटर–तकनीक में एकीकृत होने के कारण नए कम्प्यूटर कम मूल्य एवं सूक्ष्म आकार में उपलब्ध हुए हैं। संसाधित्र के साथ ही साथ अन्य उपसाधन एवं सहायक यंत्रों में भी परिवर्तन हो जाता है एवं आकार सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता जाता है। कम्प्यूटर के लिए एक भंडारण युक्ति फ्लापी में भी कितने अन्तर आए। यह आरंभिक रूप में 8" की बनी थी परन्तु कालान्तर में इसका आकार $5^{1/4}$", $3^{1/2}$", 2" होता गया। यही नहीं, इसकी भंडारण शक्ति पहले की अपेक्षा कई गुणा अधिक हो गई। अब तो फ्लापी के स्थान पर सी.डी. उपलब्ध है जिसकी भण्डारण शक्ति इतनी अधिक है कि कई फ्लापियों का भंडारण एक ही सी.डी. में समाहित हो सकता है।

कम्प्यूटर की संसाधन शक्ति एवं क्षमता में अभूतपूर्व परिवर्तन उजागर हुआ है। दो दशक पूर्व कम्प्यूटर को ई.डी.पी. के नाम से सम्बोधित किया जाता था। आजकल हम इसे 'नॉलेज मशीन' अथवा 'विज़डम मशीन' कहने लगे हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा प्रवर्तित सेवाएँ

ऐसा प्रतीत होता है कि सूचना प्रौद्योगिकी प्रवर्तित सेवाओं के कारण यह प्रत्येक क्षेत्र में अपनी नई शक्ति का द्योतक साबित होगा। यह शक्तियाँ दिन प्रतिदिन नई दिशाओं में विस्तारित होती प्रतीत होती हैं। इसका प्रभाव विज्ञान एवं वाणिज्य के सभी पहलुओं में लक्षित हो रहा है। इसके द्वारा कई नई तकनीकी शब्दावली का विकास हुआ है– जैसे बायोइनफार्मेटिक्स, टेलीमेडिसिन, मोबाइल, मल्टीमीडिया आदि। चित्र 2 में
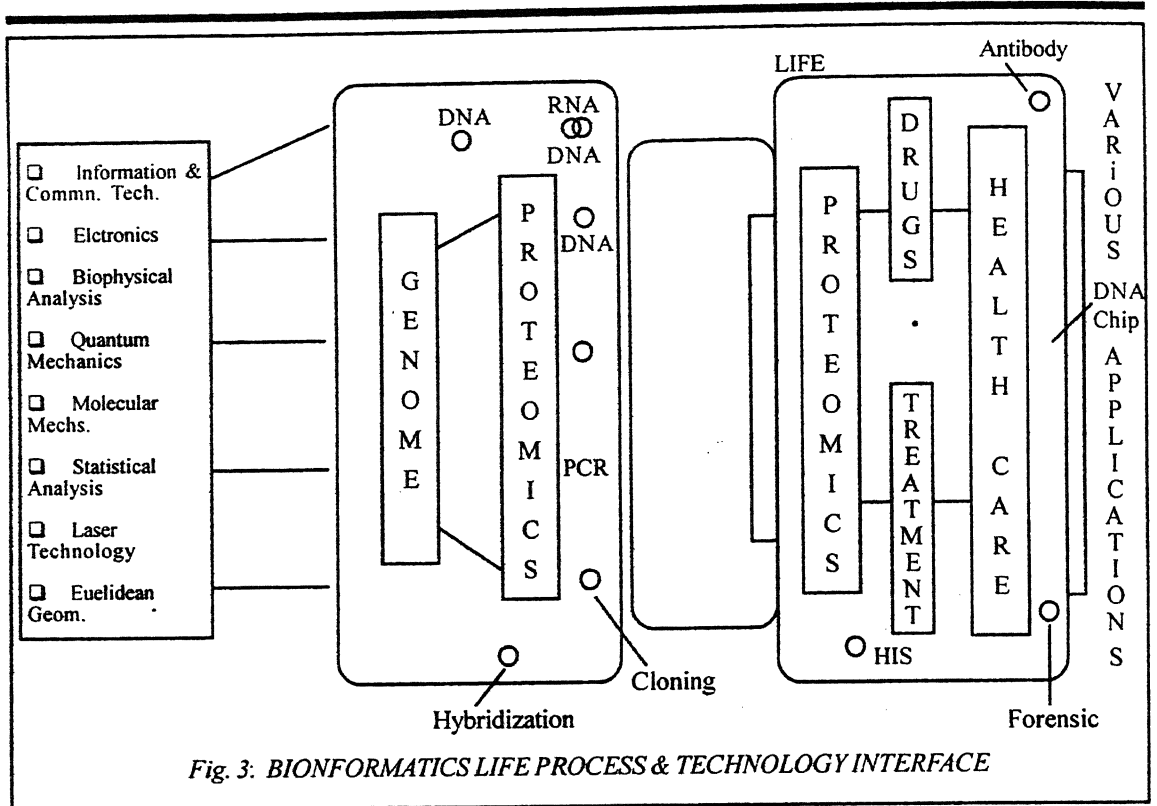
Fig. 3: BIONFORMATICS LIFE PROCESS & TECHNOLOGY INTERFACE

कुछ नई प्रवर्तित सेवाओं के सिद्धान्तों को दर्शाया गया है। ऐसी आशा की जाती है कि इन नए उपकरणों की सहायता से मानव जीवन एक नए दृष्टिकोण को अपनाएगा व विज्ञान एवं तकनीक की सफलता के कई नए आयाम उद्घाटित होंगे।

आज के युग की मोबाइल सेवाओं को सुदृढ़ बनाने में आई.टी. का विशेष योगदान है। चित्र 3 में जीव विज्ञान को नए स्वरूप में अध्ययन करने का भव्य चित्रण है। नई तकनीकी के उपयोग के फलस्वरूप स्वास्थ्य सेवाओं को सम्पूर्ण रूप में समझने व उनके उपचार में नई टेक्नोलॉजी–बायोइनफार्मेटिक्स– एक नया अध्याय/आयाम प्रारम्भ कर रही है। यह विषय सभी के जीवन के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगा। यह जीव विज्ञान, कम्प्यूटर तकनीकी, संचार तकनीकी, इलेक्ट्रानिक्स, लेसर तकनीक एवं कई अन्य वैज्ञानिक संसाधनों का संगम है। में इन्टरनेट के उपयोग द्वारा रेल यात्री अपना आरक्षण घर बैठे स्वयं कर सकते हैं। यह विधि ई–कामर्स का एक ज्वलंत उदाहरण है जिसमें ई–मनी का उपयोग किया गया है।

उपसंहार

सूचना प्रौद्योगिकी तीव्र गति से परिवर्तित होने की एक शक्ति है। इसके उपयोग से भिन्न–भिन्न प्रकार के उपकरणों को जन्म दिया जा रहा है। आशा है कालान्तर में आई.टी. हम सबके जीवन में कई मूलभूत परिवर्तन लाने में सफल होगी एवं हम सबका जीवन इस नवीनतम विज्ञान से अत्यधिक सक्षम व प्रभावित हो सुखमय हो सकेगा।

निदेशक
यू पी टेक
इलाहाबाद

भूगर्भ में छिपा नैसर्गिक नाभिकीय रिऐक्टर

प्रो0 देवेन्द्र कुमार राय

जब सन् 1942 के दिसम्बर में शिकागो विश्वविद्यालय में एनरिको फर्मी और उनके सहयोगियों ने पहले नाभिकीय रिऐक्टर का सफल निर्माण किया तो इसे विज्ञान के किसी अज्ञात क्षेत्र में एक अभिनव पदार्पण कहा गया। उन दिनों द्वितीय विश्वयुद्ध की त्रासदी संपूर्ण विश्व में व्याप्त थी और परमाण्विक विखंडन से संबद्ध सभी शोधकार्य सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत गोपनीय रखे जाते थे। अतः फर्मी की सफलता की सूचना कोड संदेश द्वारा वाशिंगटन को पहुँचाई गई थी। उस समय किसी ने सपने में भी नहीं सोचा होगा कि नाभिकीय विखंडन पर आधारित ऐसे रिऐक्टर क्या कभी पृथ्वी के गर्भ में भी रहे होंगे ?

रेडियोधर्मिता की खोज के कुछ ही दिनों बाद यह पता चल गया था कि रेडियोधर्मी परमाणु के अभ्यंतर में अपार ऊर्जा का स्रोत है। इस ऊर्जा को तकनीकी उपायों द्वारा नियंत्रित करके मानव हित में लगाया जा सकता है। वैज्ञानिकों के समक्ष यह एक विचारणीय प्रश्न था। रदरफोर्ड की तो यह धारणा थी कि ऐसा करना संभव नहीं होगा। परन्तु सन् 1938–39 में जर्मन वैज्ञानिकों, ऑटो हॉन और स्ट्रासमान ने यूरेनियम के विखंडन की खोज की तथा आटोफ्रिश (Otto Frisch) एवं लिसे माइट्नर (Lise Meitner) ने इसका सैद्धान्तिक विवेचन किया। उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हुआ कि एक यूरेनियम परमाणु के विखंडन में लगभग 200 Mev ऊर्जा निकलती है तथा विखंडन से प्राप्त न्यूट्रानों की सहायता से नाभिकीय विखंडन की एक सतत श्रृंखला प्राप्त हो सकती है।

नाभिकीय विखंडन अभिक्रियाओं की श्रृंखला की संभावना की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान सर्वप्रथम क्रिश्चियन मोयलर नामक एक डच वैज्ञानिक ने आकृष्ट किया। उसने बताया कि यह विखंडन–श्रृंखला तब तक चलती रह सकती है जब तक कि विखंडन के लिए यूरेनियम के नाभिक उपलब्ध रहें। मोलर ने इसके आधार पर यह आशंका व्यक्त की कि पृथ्वी में यूरेनियम तत्व के भंडार नहीं प्राप्त किए जा सकते क्योंकि इस भंडार में यदि किसी भी प्रकार के नाभिकीय विखंडन की प्रक्रिया आरंभ हो जाए तो वह तभी समाप्त होगी जब संपूर्ण यूरेनियम विखंडित हो जाएगा।

पृथ्वी पर अनेक स्थानों पर यूरेनियम के खनिजों के भंडार आज भी पाए जाते हैं। अतः नाभिकीय विखंडन श्रृंखला के स्वतः आरंभ होने तथा निर्बाध चलते रहने की संभावना अत्यल्प ही हो सकती है। फ्रिश के अनुसार, यूरेनियम खनिज भंडारों में अन्य तत्व भी उपस्थित रहते हैं अतएव विखंडन के फलस्वरूप निर्गत अधिकतर न्यूट्रान इन अन्य तत्वों के नाभिकों द्वारा अवशोषित हो जाते हैं, अतः श्रृंखला अभिक्रिया बंद हो जाती है। नील्स बोर ने इस तथ्य की ओर भी संकेत दिया कि मंद न्यूट्रानों द्वारा यूरेनियम के जिस समस्थानिक का विखंडन संभव है, यूरेनियम के किसी प्राकृतिक स्रोत में उसकी उपलब्धता मात्र 0.7 प्रतिशत होती है। अतः विखंडन के स्वतः प्रारंभ होने की संभावना अत्यल्प ही होगी। इसी प्रकार के अन्य कई तर्क भी प्रस्तुत किए गए और सन् 1940 के बाद वैज्ञानिकों ने पृथ्वी पर स्वतः नाभिकीय विखंडन की घटना घटित होने की संभावना को पूर्णतया नकार ही दिया।

सन् 1953 में कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के जार्ज वेदरिल (George Weatherill) तथा शिकागो विश्वविद्यालय के मार्क इंघम (Ingham) ने पृथ्वी के गर्भ में यूरेनियम भंडारों में नाभिकीय विखंडन श्रृंखला पाए जाने की संभावना व्यक्त की। परंतु वैज्ञानिकों ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। सन् 1956 में एक जापानी वैज्ञानिक, पाल कुरोडा (P. Kuroda) ने भूगर्भ

में नाभिकीय रिऐक्टर के अस्तित्व की संभावना पर एक विस्तृत सैद्धान्तिक विवेचन प्रस्तुत किया। कुरोडा ने उन प्रतिबंधों को ज्ञात किया जिनके रहते ही कोई स्वतः स्फूर्त नाभिकीय रिऐक्टर अस्तित्व में आ सकता था। उनके अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि यूरेनियम खनिजों में दोनों समस्थानिकों U^{238} तथा U^{235} का अनुपात जो वर्तमान समय में है, वही पूर्वकाल में भी रहा हो। यदि U^{235} की प्रचुरता का अनुपात वर्तमान समय में पाए जाने वाले अनुपात (0.7 प्रतिशत) के स्थान पर 3 प्रतिशत रहा हो तो विखंडन की प्रक्रिया स्वतः आरंभ हो सकती थी। कुछ वर्षों बाद कुरोडा ने इस विवेचन में अनेक सुधार किए। परन्तु, चूँकि पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों से प्राप्त यूरेनियम खनिजों में कहीं भी U^{235}/U^{238} उपलब्धता अनुपात में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया था, अतः कुरोडा के इस शोधकार्य को भी कल्पना की ऊँची उड़ान मात्र ही समझा गया।

सामान्यतः जब भी किसी नाभिकीय रिऐक्टर संयंत्र के लिए यूरेनियम ईंधन की छड़ों का निर्माण आरंभ किया जाता है, तो खनिज यूरेनियम में U^{235} एवं U^{238} के अनुपात का मापन अवश्य किया जाता है। सन् 1950 से 1970 के बीच, अनेक देशों में प्राकृतिक यूरेनियम पर आधारित नाभिकीय रिऐक्टर विद्युत ऊर्जा उत्पादन के लिए बनाए गए और इस कारण भिन्न–भिन्न स्थानों पर $^{235}U/^{238}U$ उपलब्धता अनुपात का मापन किया गया। ये खनिज पृथ्वी के विभिन्न देशों की विभिन्न खदानों से आए थे। इन मापनों के आधार पर यह पाया गया कि सभी स्थानों से प्राप्त खनिजों में $^{235}U/^{238}U$ का मान 0.007202 ± 0.000062 के बीच था।

सन् 1972 में 2 जून को फ्रांस में पियरे लाटे स्थित नाभिकीय ईंधन प्रसंस्करण केन्द्र पर एक वैज्ञानिक एच. बाउजीगुएस (H. Baugigues) ने $^{235}U/^{238}U$ उपलब्धता अनुपात का पुनः मापन किया। इस अनुपात का मान 0.00717 मिला जो सामान्य अनुपात से भिन्न था। इन मापनों की विश्वसनीयता शुद्धता इतनी अधिक होती है कि यद्यपि सामान्य मान से इसका अन्तर केवल 0.00003 मात्र था, फिर भी इसे नगण्य नहीं माना जा सकता था। रिऐक्टर केन्द्र के वैज्ञानिकों ने पहले तो यह कहा कि इस खनिज यूरेनियम में रिऐक्टर से निकले हुए यूरेनियम का मान घट गया है। (वास्तव में, किसी रिऐक्टर में ^{235}U का ही विखंडन होता है ^{238}U का नहीं, अतः रिऐक्टर से निर्गत ईंधन में ^{235}U की प्रचुरता कम होती है)। परन्तु यह व्याख्या सही नहीं सिद्ध हो सकी, क्योंकि जब यह जाँच की गई कि यूरेनियम की यह खेप कहाँ से प्राप्त की गई है, तो ज्ञात हुआ कि यह दक्षिण अफ्रीका के दक्षिण पश्चिम भाग में स्थित देश गेबॉन (Gabon) की ओक्लो खदान से प्राप्त की गई थी। इन खदानों में यूरेनियम की उपलब्धता (प्रति टन कच्चे खनिज में यूरेनियम की मात्रा) अन्य स्थानों से प्राप्त खनिजों की अपेक्षा अधिक थी। जब इन खदानों से प्राप्त खनिजों की सूक्ष्म रासायनिक जाँच की गई तो एक आश्चर्यजनक तथ्य सामने आया। यह देखा गया कि यूरेनियम खनिजों में कुछ ऐसे तत्व भी उपस्थित हैं जो केवल यूरेनियम के नाभिकीय विखंडन में ही बनते हैं। विखंडन से उत्पन्न होने के समय तो ये तत्व रेडियोधर्मी होते हैं, परन्तु धीरे–धीरे इनकी रेडियोधर्मिता घटती जाती है। चूँकि वर्तमान खनिजों में इन तत्वों की रेडियोधर्मिता बिल्कुल समाप्त हो गई है, अतः यह अनुमान लगाया जाता है कि इन तत्वों की उत्पत्ति नाभिकीय विखंडन द्वारा लगभग 170 करोड़ वर्ष पूर्व हुई थी। अब तो वैज्ञानिक यह मानते हैं कि ओक्लो की खदानों में किसी काल में यूरेनियम पर आधारित एक नैसर्गिक नाभिकीय रिऐक्टर कार्यरत था जो लगभग 170 करोड़ वर्ष पूर्व बंद हो गया।

उपर्युक्त निष्कर्ष मुख्यतः दो तथ्यों पर आधारित है। प्रथम के अनुसार सौर मंडल में स्थित प्रत्येक स्थान पर यूरेनियम की प्रचुरता का आपसी अनुपात एक समय पर एक जैसा ही होना चाहिए। किसी खनिज में यूरेनियम की प्रचुरता तो भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न हो सकती है, क्योंकि यह विभिन्न प्रकार की रासायनिक क्रियाओं पर निर्भर करती है, परन्तु चूँकि रासायनिक अभिक्रियाएँ समस्थानिकों में भेद नहीं करतीं अतः समस्थानिकों के आपेक्षिक अनुपात स्थान–निरपेक्ष होने चाहिए। चूँकि ओक्लो की खदानों में ^{235}U का अनुपात घटा हुआ है, अतः यह किसी नाभिकीय अभिक्रिया जैसे नाभिकीय विखंडन के कारण हो सकता है। दूसरा तथ्य यह है कि इस खदान में यूरेनियम खनिजों के पास ही उन तत्वों की भी प्रचुरता

पाई जाती है जो कि यूरेनियम में नाभिकीय विखंडन से प्राप्त होते हैं। ये विशेष तत्व पास में स्थित अन्य खनिजों के साथ या तो बिल्कुल ही नहीं मिलते या फिर सामान्यतया अपेक्षित अल्प मात्रा में ही प्राप्त होते हैं। यहाँ तक कि निकटस्थ यूरेनियम के अन्य खनिज भंडारों में भी इन तत्वों की उपस्थिति अत्यल्प मात्रा में ही पाई जाती है। इससे भी यह निष्कर्ष पुष्ट होता है कि यहाँ पर पूर्व में कभी यूरेनियम का नाभिकीय विखंडन हुआ था।

इन अन्वेषणों के बाद ओक्लो की खदानों के यूरेनियम भंडारों और खनिज उत्पादों की जाँच परख विशेष शुद्धता के साथ की गई। इससे यह निष्कर्ष निकला है कि ओक्लो में पूर्व काल में किसी समय एक ही नहीं वरन् छः नाभिकीय रिऐक्टर सक्रिय रहे होंगे। खदानों में पानी का रिसाव होता रहता था जो कि विखंडन से निःसृत उच्च ऊर्जायुक्त न्यूट्रानों को मंदित करने के साथ ही विखंडनजन्य ऊष्मा को हटाने का भी कार्य करता था। एक अनुमान के अनुसार इन रिऐक्टरों के बंद हो जाने का कारण था पानी का अभाव। जब तक पर्याप्त जल उपलब्ध था ये रिऐक्टर करोड़ों वर्षों तक कार्यरत रहे।

कितने आश्चर्य की बात है कि जिस नाभिकीय रिऐक्टर की अभिक्रिया की सफल खोज को विज्ञान की एक महान उपलब्धि माना जाता है, वह प्रकृति में करोड़ों वर्ष पूर्व से ही स्वतःघटित होती रही है और मनुष्य उससे अनभिज्ञ रहा है। इस प्रकार का यह कोई अकेला या पहला उदाहरण नहीं है। विचारणीय है कि जिन नई प्रक्रियाओं को वैज्ञानिक अपने श्रम, अध्यवसाय एवं बुद्धिबल से आविष्कृत करता है, वे बहुधा प्रकृति में कहीं न कहीं स्वाभाविक रूप से घटित होती पाई जाती हैं। सन् 1960 के दशक में रेडियो तरंगों द्वारा ब्रह्मांड का अध्ययन होने लगा। इस अध्ययन से ज्ञात हुआ कि सन् 1955 ई. में टाउन्स नामक वैज्ञानिक ने जिस मेसर प्रक्रिया माइक्रोवेव ऐम्प्लिफिकेशन बाई इस्टीमुलेटेड ऐमिशन ऑफ रेडियेशन (उत्प्रेरित उत्सर्जन द्वारा माइक्रोतरंग विकिरण का प्रवर्धन) का आविष्कार किया वह अंतरनीहारिकीय अंतरिक्ष में करोड़ों वर्षों से जारी है, हालाँकि हम उसे समझने में असमर्थ थे।

दूसरा महत्वपूर्ण विचारणीय तथ्य है संख्यात्मक या परिमाणात्मक मापनों की शुद्धता का महत्व। उपर्युक्त विवेचन में हमने देखा है कि सन् 1972 के एक नियमित विश्लेषण में $^{235}U/^{238}U$ मापन में अत्यल्प अन्तर था परन्तु उसी अंतर ने आगे की खोज की एक नई दिशा निर्धारित की जिसका समापन भूगर्भ में नैसर्गिक नाभिकीय रिऐक्टरों के अस्तित्व के सत्यापन तक जा पहुँचा।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या प्राकृतिक रिऐक्टरों के अस्तित्व का कोई अन्य स्वतंत्र प्रमाण भी पृथ्वी पर उपलब्ध है ? इस बात पर विचार करने के लिए हमें भूगर्भ संबंधी उपलब्ध जानकारी पर गहराई से विचार करना होगा। पृथ्वी की संरचना को कई पर्तों में विभक्त माना जाता है। पृथ्वी के केन्द्र से लगभग 1200–1300 किमी की दूरी तक फैला हुआ केन्द्रस्थ गोला पृथ्वी का क्रोड माना गया है। इस क्रोड का तापमान अति उच्च है तथापि उच्च दाब के कारण यह ठोस अवस्था में ही है। इस क्रोड के चारों ओर लगभग 1500–1700 किमी0 मोटा बाह्य क्रोड है, जो द्रव अवस्था में है। पृथ्वी के केन्द्र से लगभग 3000–3200 किमी0 के बाद ठोस मेन्टल वाला भाग आरंभ होता है, जिसकी ऊपरी पतली सतह पर भूतल पृष्ठ (क्रस्ट) है। द्रव क्रोड में अनेक प्रकार की उथल पुथल होती रहती है जैसे– संवहन द्वारा द्रव ऊपर उठता है और गुरुत्वाकर्षण तथा शीतल हो जाने के कारण यह द्रव पुनः नीचे की ओर गिरता है। पृथ्वी की घूर्णन गति के कारण एक डाइनेमो प्रभाव भी उत्पन्न होता है। पृथ्वी के गर्भ में इन क्रोडों के अस्तित्व इनकी भौतिक परिस्थितियों एवं इनके गुणों (जैसे घनत्व आदि) के विषय में, भूगर्भवेत्ताओं ने, भूकंप की घटनाओं में उत्पन्न प्रत्यक्ष तरंगों की गति के अध्ययन से बहुत सी जानकारी प्राप्त की है। भीतरी ठोस क्रोड और बाहरी द्रव क्रोड, दोनों ही में लौह–निकेल तथा इनके यौगिकों विशेषतः इनके सल्फाइडों की उपस्थिति मानी जाती है।

सर्वप्रथम सन् 1979 में हर्नडान (Herndon) नामक वैज्ञानिक ने कुछ उल्का पिंडों के अध्ययन के बाद यह कहा कि क्रोड लौह–निकेल मिश्रधातु का न होकर निकेल सिलिकॉन यौगिकों का बना हुआ है। 1990 के दशक में इसी वैज्ञानिक ने यह सुझाव भी दिया कि यूरेनियम के यौगिक, विशेषतः यूरेनियम–सल्फाइड, अधिक घनत्व के कारण, पृथ्वी

की अन्तरतम क्रोड में उपक्रोड के रूप में अवस्थित हो सकते हैं। सन् 1993 में हर्नडान ने कुरोडा के सैद्धान्तिक विवेचन और गेबॉन की, भूगर्भ में यूरेनियम विखंडन रिऐक्टरों की पूर्वकालिक उपस्थिति (ओक्लो की यूरेनियम की खदानों में) की धारणा के आधार पर यह विचार प्रस्तुत किया कि इस उपक्रोड में स्थित यूरेनियम के यौगिकों के कारण पृथ्वी के केन्द्र के पास भी विखंडन की प्रक्रिया स्वयं प्रारंभ हो सकती है। इससे उत्पन्न ऊर्जा के कारण आसपास के पदार्थ पिघल कर पृथ्वी के केन्द्र से दूर हटने का प्रयास करेंगे। इसके चलते केन्द्र पर यूरेनियम के यौगिकों की उपलब्धता में कमी आएगी, परन्तु यह कमी, अपेक्षतः भारी यूरेनियम–सल्फाइड के बाहर से भीतर की ओर आने के कारण, थोड़ी ही देर में पूरी हो जाएगी, फलतः नाभिकीय विखंडन की प्रक्रिया पुनः आरंभ हो जाएगी। एक विस्तृत गणितीय विवेचन द्वारा हर्नडान तथा उसके सहयोगियों ने इस निष्कर्ष की व्यावहारिकता को दर्शाया है। उन्होंने इसी प्रक्रिया के आधार पर पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र में प्रेक्षित परिवर्तनों, विशेषकर उन घटनाओं को जिनमें चुम्बकीय क्षेत्र की दिशा भी उलट जाती है, की व्याख्या प्रस्तुत की है। फिलहाल इनके इस विवेचन की वैज्ञानिक प्रामाणिकता अभी सिद्ध नहीं हो सकती है। रिऐक्टर की उपस्थिति का प्रमाण तो विखंडन में प्राप्त उत्पादों के विश्लेषण से ही प्राप्त हो सकता है, परन्तु भीतरी क्रोड में उपस्थित उत्पादों को प्राप्त करने का अभी कोई उपाय नहीं है। हर्नडान ने इस अभिकल्पना के आधार पर पृथ्वी की संभावित आयु का भी परिकलन किया है और यह आयुमान सामान्य अनुमानों से भिन्न है।

विखंडन की प्रक्रिया में हीलियम गैस के नाभिक भी उत्पन्न होते हैं। ये हल्के तथा रासायनिक दृष्टि से निष्क्रिय होते हैं अतः उत्सर्जित हीलियम गैस रिऐक्टर से पर्याप्त दूरी तक विसरित हो सकती है। विसरण की इस प्रक्रिया में यह गैस कभी कभी मैन्टल में उपस्थित अनेक गहरी दरारों में से होती हुई पृथ्वी की सतह पर भी आ सकती है। पृथ्वी तल पर अनेक ऐसे स्थान हैं जहाँ भूगर्भ से हीलियम गैस निकलती पाई जाती है। प्रश्न यह है कि यह कैसे निर्धारित किया जा सकता है कि यह गैस किसी नाभिकीय विखंडन से प्रादुर्भूत है या किसी अन्य स्रोत से।

नाभिकीय विखंडन का एक उत्पाद हाइड्रोजन का एक ऐसा समस्थानिक है जिसका द्रव्यमान 3 है। इसमें एक प्रोटान तथा 22न्यूट्रान होते हैं। यह समस्थानिक स्थायी नहीं होता परन्तु इसका आयुकाल लगभग 12 वर्ष या कुछ अधिक ही होता है। रेडियोसक्रिय क्षरण द्वारा यह हीलियम के उस समस्थानिक में परिवर्तित हो जाता है जिसका द्रव्यमान 3 है। इस कारण नाभिकीय विखंडन की प्रक्रिया से प्राप्त हीलियम गैस के दोनों समस्थानिकों ^3He और ^4He का आपेक्षिक प्रचुरता अनुपात अन्य विधियों से उत्पन्न हीलियम की अपेक्षा अधिक होगा।

पृथ्वी के वायुमंडल में प्राप्त हीलियम गैस में ^3He की उपलब्धता 0.0001373 प्रतिशत तथा ^4He की 99.9998633 प्रतिशत आँकी गई है। पृथ्वी के बाहरी ठोस आवरण क्रस्ट में, जहाँ (जल के साथ) हीलियम भी निकलती है, ^3He की आपेक्षिक उपलब्धता और भी कम पाई जाती है। इसके विपरीत पृथ्वी के ठोस मैन्टल में, अधिक गहराई से निकलने वाली हीलियम गैस में $^3He/^4He$ अनुपात अधिक पाया जाता है। अनुपात का यह अन्तर सर्वप्रथम अमेरिका महाद्वीप में स्थित सेन्ट एन्ड्रियास (St. Andreas) नामक भूगर्भीय खाई से प्राप्त हीलियम में देखा गया है। हर्नडान ने अपने गणितीय विवेचन में यह दिखाया कि $^3He/^4He$ उपलब्धता अनुपात का मान इस बात पर निर्भर है कि भूगर्भ स्थित रिऐक्टर कितनी ऊर्जा उत्पादित कर रहा है और कितनी देर तक लगातार सक्रिय रहता है। अनुपात के संख्यात्मक परिमाण लगभग उसी कोटि के हैं जैसे कि प्रेक्षणों से प्राप्त हुए हैं। अतएव इस बात की प्रबल संभावना है कि पृथ्वी की सबसे भीतरी क्रोड में भी शक्तिशाली परमाण्विक विखंडन रिऐक्टर सक्रिय था या अब भी सक्रिय है।

प्रोफेसर, भौतिकी विभाग
विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी-5

क्या धरती पर मौजूद सभ्यता ही एकमात्र जीव सभ्यता है ? क्या धरती से इतर भी कहीं कोई जीवन है ? क्या इंसानी सभ्यता की तरह कोई बौद्धिक सभ्यता कहीं किसी खगोलीय पिंड पर अस्तित्व में है ? यह ऐसा सवाल है जिसका जवाब देना कठिन है। यह प्रश्न जितना आम आदमी को कुरेदता है उतना ही किसी ज्ञानी और विज्ञानी को भी। वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक प्रगति के बाद भी यह सवाल एक पहेली बना हुआ है। चूँकि इंसान स्वभाव से ही अन्वेषी प्रवृत्ति का है इसलिए वह प्रकृति के मूल में निहित शक्तियों तथा अर्थों को समझने की कोशिश करता रहा है। प्राचीनकाल से ही वह सूरज, चाँद, सितारे, ज्वार–भाटा, भूकम्प, ज्वालामुखी, बादलों की चमक और गरज, ऋतु परिवर्तन जैसी अन्यान्य घटनाओं को कौतूहल से देखता और उनके पीछे कार्य–कारण को समझने का प्रयास करता रहा है। इंसान जब सुदूर अंतरिक्ष में स्थित पिंडों को देखता था तो जाहिर है अनेक सवाल उसके मन में उठते थे। मसलन ये कि पिंड वास्तव में क्या हैं ? क्या ये धरती सरीखे ही हैं ? यदि हाँ, तो क्या वहाँ भी कोई सभ्यता निवास करती है ? और यदि वहां भी जीवन है तो क्या उनकी सभ्यता और संस्कृति हमारे जैसी ही है, या फिर वे अलग हैं ? मानव मन ने कल्पना शक्ति के सहारे ढेर सारी कहानियाँ भी गढ़ ली हैं। अनेकानेक लोकों की कल्पना पौराणिक साहित्य में मिलती है। पारलौकिक जीवों के निवास और उनकी संस्कृति का भी उल्लेख मिलता है। बचपन में सुनी गई परियों और परी लोक की बातें अवचेतन मन में कहीं न कहीं इस बात का बीजारोपण कर देती हैं कि संपूर्ण ब्रह्माण्ड में इंसान ही एक सभ्यता नहीं है बल्कि अन्य जगहों पर भी जीवन है।

आइए, देखें कि **ब्रह्माण्ड क्या है ?** इसका विस्तार क्या है, तथा किसी जीवन के पाए जाने की कितनी संभावना है ? हम अपने आसपास जो कुछ भी देखते या अनुभव करते हैं वह सब ब्रह्माण्ड का हिस्सा है। धरती, चाँद, सितारे सब ब्रह्माण्ड के ही हिस्से हैं। स्वच्छ खुली रात को आसमान में टिमटिमाते अनगिनत तारे सदा से कौतूहल का कारण रहे हैं। एक अनुमान के मुताबिक हमारे ब्रह्माण्ड में करीब एक अरब मंदाकिनियाँ (गैलेक्सीज) हैं। मंदाकिनी तारों का एक निश्चित समूह होती है। हमारी आकाशगंगा एक मंदाकिनी है और हमारा सूर्य उसका एक अदना सा तारा है। रात में आकाश में एक छोर से दूसरे छोर की ओर जाती हुई धुँधली पट्टी हमारी आकाशगंगा है। एक अनुमान के अनुसार मोटे तौर पर इस आकाशगंगा में तकरीबन एक खरब तारे हैं। हमारा सूर्य उनमें से एक औसत तारा है। तमाम ऐसे तारे भी हैं जो आकार में सूर्य से बड़े हैं। हमारे सूर्य के पास नौ ग्रह हैं जो उसके परितः परिक्रमा करते हैं। पृथ्वी भी सूर्य के नौ ग्रहों में से एक है। ग्रह के चारों ओर घूमने वाले पिंड उपग्रह कहलाते हैं। चन्द्रमा पृथ्वी का एक उपग्रह है। सूर्य सहित इसके ग्रहों और उपग्रहों के समूह को **सौरपरिवार** या **सौरमंडल** कहते हैं। सौरमंडल में बृहस्पति और शनि जैसे बड़े ग्रह

भी हैं जिनके कई चन्द्रमा हैं। अभी तक की खोज के अनुसार सौरमंडल में कुल मिलाकर 53 चन्द्रमा हैं। एक अनुमान के अनुसार ब्रह्माण्ड में करीब दस प्रतिशत तारों के पास अपना ग्रह तंत्र (प्लैनेटरी सिस्टम) है। कार्ल सैगन का दृढ़ मत था कि सिर्फ आकाशगंगा में ही दस लाख उन्नत सभ्यताएँ मौजूद हैं। उनके एक सहयोगी फ्रैंक ड्रेक का आकलन जरा कम है। उनके अनुसार इस ब्रह्माण्ड में करीब दस हजार सभ्यताएँ अस्तित्व में हैं। ये सभी आकलन महज अनुमानों पर आधारित हैं क्योंकि अभी तक हमें किसी सभ्यता के होने का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिला है। लेकिन विद्वानों का मत है कि किसी 'सभ्यता का प्रमाण न होना सभ्यता के न होने का प्रमाण' नहीं है। उन लोगों का मानना है कि बहुत संभव है कि इस आकाशगंगा में हम अकेले हों लेकिन यह मानना नामुमकिन है कि इस पूरे ब्रह्माण्ड में हम अकेले हैं।

हमारे पौराणिक साहित्य में तो अनेक परलोकों का उल्लेख मिलता है जैसे देवलोक, असुरलोक, किन्नरलोक, गंधर्वलोक, यमलोक इत्यादि। धरती से इतर अन्य लोकों की बातें सिर्फ हमारे यहां की पुस्तकों में हों, ऐसा नहीं है। बल्कि इस तरह की मिलती जुलती कथाएँ दुनिया की अन्य सभ्यताओं में भी मिलती हैं। रोम में प्रचलित लोककथा के अनुसार मंगल ग्रह पर सभ्यता है। कथा के अनुसार वहां के लोग हरे रंग के होते हैं। यूनान, मिस्र जैसी प्राचीन सभ्यताओं में भी इस तरह की लोककथाएँ प्रचलित हैं। हिन्दू जीवन पद्धति में तो विश्वास है कि हमारे पूर्वजों की आत्माएँ पितृपक्ष में हमसे मिलने आती हैं। इसीलिए उस समय श्राद्धतर्पण तथा दानपुण्य करने की बात कही गई है।

पारलौकिक जीवन की खोज में हमारे ध्यान का सबसे बड़ा केन्द्र मंगल ग्रह है। सन् 1877 में इटली के खगोलविद् जियोवानी शिपरेली ने कहा कि मंगल पर जीवन है क्योंकि उनके अनुसार उन्हें दूरबीन से देखने पर मंगल की सतह पर नहर जैसी आकृतियाँ दिखाई दी थीं। एच.जी. वेल्स ने 1898 में अपने उपन्यास में इस बात की कल्पना की थी कि मंगल ग्रह पर सभ्यता मौजूद है और वहाँ के निवासी धरती पर आक्रमण करते हैं। बाद में 1907 में पर्सीवल लोवेल ने मंगल पर बौद्धिक सभ्यता होने की तस्वीर खींची थी। लब्धप्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका 'नेशनल जियोग्राफिक' ने 1939 में उल्लेख किया था कि मंगल पर वनस्पतियाँ हैं लेकिन यह कहना कठिन है कि वहाँ कोई मंगलवासी प्राणी भी है। लेकिन कुछ लोग इस तरह के विचारों को निराधार मानते थे। बीसवीं सदी के मध्य में एनरिको फर्मी ने अपने सहयोगियों से एक बार कहा था कि यदि हमारे आसपास तमाम सभ्यताएँ मौजूद हैं तो फिर लोग हैं कहाँ ? आखिर उनके होने का कोई प्रमाण या संकेत अभी तक क्यों नहीं मिल सका है ? उनके कहने का आशय यह था कि ब्रह्माण्ड में इंसानी सभ्यता ही एकमेव सभ्यता है। वे अन्यत्र जीवन होने की परिकल्पना को नकारते थे।

जीवन के लिए सबसे जरूरी चीज है **पानी**। यदि किसी खगोलीय पिण्ड पर पानी मिले तभी हम वहाँ जीवन होने की उम्मीद कर सकते हैं। चन्द्रमा पर हम जुलाई 1969 में ही जाकर देख आए हैं कि वहाँ हवा पानी नहीं है अतः जीवन होने का सवाल ही नहीं उठता। फिर दूसरे ग्रह की ओर देखने की बारी आई। बुध पर जीवन अकल्पनीय है क्योंकि वह सूर्य के बहुत निकट है तथा वहाँ तापमान बहुत ज्यादा है। इसके बाद निगाह गई मंगल की ओर। मंगल को लेकर काफी पहले से कयास लगाए जा रहे थे। गैलीलियो के समय से ही इस बात की संभावना व्यक्त की जा रही है कि मंगल पर कोई सभ्यता जरूर है क्योंकि दूरबीन से देखने पर वहाँ मौसम परिवर्तन तथा नदियों और नहरों जैसी संरचनाएँ दिखाई देती रही हैं। अगस्त 1996 में अण्टार्कटिका के एलन हिल्स में मिले एक उल्का पिंड के बारे में यह तय पाया गया कि वह मंगल से आया है और उसमें कथित तौर पर सूक्ष्मजीवों के जीवाश्म पाए गए। इस बात से मंगल ग्रह पर जीवन होने के बारे में धारणा बलवती होने लगी। हालाँकि दो दशक पहले भी मंगल पर कई यान भेजे गए थे लेकिन वहाँ जीवन होने के बारे में सही–सही तौर पर कुछ पता नहीं चल सका था। लेकिन इस उल्का पिंड वाले प्रकरण के बाद मंगल ग्रह के बारे में फिर से गंभीरता से सोचा जाने लगा है।

इसी क्रम में पाथफाइन्डर नामक यान मंगल पर भेजा गया। यान 4 जुलाई 1997 को मंगल पर सफलतापूर्वक उतरा। यान में छह पहियों वाली एक

भूनियंत्रित बग्घी भेजी गई थी जिसका नाम सोजर्नर था। सोजर्नर ने मंगल की धरती पर घूम–घूमकर वहाँ की मिट्टी और चट्टानों के चित्र भेजे। चित्रों में मंगल पर पानी के प्रवाह के स्पष्ट चित्र दिखाई दिए। इससे एक बात साबित हुई कि भले ही आज वहाँ पानी न हो लेकिन आज से करोड़ों वर्ष पहले वहाँ विपुल जलराशि थी। इससे वैज्ञानिक बहुत उत्साहित हुए। बाद में उन्होंने मार्स ग्लोबल सर्वेयर तथा मार्स पोलर लैंडर नामक यान भी भेजे। इसमें मार्स ग्लोबल सर्वेयर ने परिक्रमा करते हुए मंगल के धरातल के बारे में महत्वपूर्ण जानकारियाँ दीं। पोलर लैंडर उतरते समय दुर्घटनाग्रस्त हो गया तथा उससे कोई खास जानकारी वैज्ञानिकों को नहीं मिल सकी। पिछले साल अमेरिकी अंतरिक्ष संस्थान नासा ने मार्स ओडिसी 2001 के नाम से एक मिशन भेजा। मिशन ने मंगल की सतह के अंदर बर्फ होने के प्रमाण दिए हैं। यान अभी भी मंगल के चारों ओर परिक्रमा कर रहा है। संकेतों के अनुसार वहाँ इतनी जलराशि मौजूद है जो मिशीगन झील को दो बार भर सकती है। अनुमानों के अनुसार यदि एक बाल्टी मिट्टी को गरम करें तो तकरीबन आधी बाल्टी से ज्यादा पानी निकलेगा। गामा–रे स्पेक्ट्रोमीटर से प्राप्त संकेतों के अनुसार मंगल ग्रह के दक्षिणी ध्रुव पर करीब एक मीटर गहराई तक पानी मिट्टी में बर्फ के रूप में संचित है।

सौरमंडल के अन्य ग्रहों पर परिस्थितियँ इतनी जटिल हैं कि कोई जीव वहाँ रह नहीं सकता। हाँ, इधर कुछ सालों से इन ग्रहों के चन्द्रमाओं की ओर ध्यान गया है जो जीवन के अनुकूल जान पड़ते हैं। इनमें बृहस्पति के दो चन्द्रमा यानी यूरोपा और आयो पर जीवन होने की आशा बँधी है। हाल के वर्षों में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि यूरोपा की सतह बर्फ से ढँकी हुई है। अनुमान यह भी है कि इस सतह के नीचे प्रवाहमान समुद्र मौजूद है। यूरोपा के साथ अन्य तथ्य भी जुड़े हैं जो धरती से मेल खाते हैं और उनके आधार पर वहाँ जीवन होने की काफी उम्मीद जतायी जा रही है। लेकिन अभी इस बारे में कुछ निष्कर्ष निकालना जल्दबाजी होगी। हाँ, आने वाले वर्षों में व्यापक शोध के बाद ही हकीकत मालूम हो पाएगी।

सौरमंडल से बाहर जाएँ तो सबसे निकटतम तारा है अल्फा सेन्टॉरी जो हमसे चार प्रकाशवर्ष दूर है यानी वहाँ से प्रकाश को हम तक पहुँचने में चार साल का समय लग जाता है। ध्यान रहे कि प्रकाश द्वारा तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकंड के वेग से चलकर एक वर्ष में तय की गई दूरी को एक प्रकाशवर्ष कहते हैं। यदि कोई मानवनिर्मित यान पचास हजार किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से चलता जाए तो इस तारे तक पहुँचने में एक लाख साल लग जाएँगे। तो यह तो हुई सबसे पास के तारे की बात। तमाम दूसरे तारे तो हमसे लाखों प्रकाशवर्ष दूर हैं। वहाँ तक हमारे किसी मिशन के पहुँचने की बात कल्पना से परे लगती है। इसमें हमें ब्रह्माण्ड की व्यापकता तथा इसके सुदूर स्थित पिण्डों के बारे में जानने की अपनी सीमाओं का अंदाज हो जाता है। समचुच इस विराट ब्रह्माण्ड के रहस्यों को जानने के हमारे साधन अभी बौने हैं तथा हमारी प्रौद्योगिकी अपनी शैशवावस्था में है। इसलिए मिशन भेजना और लाखों वर्षों तक उनके नतीजों का इंतजार करना मुमकिन नहीं लगता। यही वजह है कि शोधकर्ता दूसरे तरीके से काम कर रहे हैं। ऐसा माना जाता है कि यदि कहीं प्रौद्योगिक रूप से विकसित सभ्यता वजूद में है तो उसके रेडियो संकेत धरती तक आने चाहिए। इसी को ध्यान में रखते हुए इन संकेतों को ग्रहण करने के लिए वैज्ञानिकों ने दुनिया भर में कई जगहों पर दूरबीनें लगा रखीं हैं तथा वे दिन–रात निगाह लगाए बैठे हैं कि शायद उन्हें अचानक कहीं से कोई संदेश मिल जाए। हालाँकि अभी तक इस दिशा में कोई सफलता नहीं मिली है लेकिन खगोलविद् अपने प्रयास में जुटे हैं और उन्हें यकीन है कि एक दिन उन्हें ब्रह्माण्ड में अन्यत्र जीवन होने का संकेत जरूर मिलेगा।

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान, मुंबई

गैसोहल यानी गन्ने से बना स्वदेशी पेट्रोल

अशोक कुमार सिन्हा

गन्ना ऊर्जा का परम स्रोत है। यही एक ऐसा पौधा है जो सौर ऊर्जा को खेत में ही सीधे रासायनिक ऊर्जा में बदल देता है। चीनी कारखानों में नहीं वरन् खेत में बनती है। कारखानों में तो इसे निकाला भर जाता है। चीनी सीधे शरीर के रक्त में घुल कर शक्ति प्रदान करती है। चीनी बनने के बाद जो शीरा बचता है उससे इण्डस्ट्रियल स्पिरिट अल्कोहल बनता है। विश्व के अनेक देशों में इस अल्कोहल को पेट्रोल में मिला कर वाहन चलाए जा रहे हैं। इसके दहन से धुआं भी नहीं बनता तथा 10 प्रतिशत तक पेट्रोल में मिलाए जाने पर वर्तमान इंजन में कोई परिवर्तन करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती।

भारत सरकार द्वारा 10 सितम्बर 2002 को एक अधिसूचना जारी कर देश के नौ राज्यों तथा चार केन्द्रशासित प्रदेशों में 1 जनवरी 2003 से एथेनाल मिश्रित पेट्रोल की बिक्री को अनिवार्य बना दिया गया है। वाहन ईंधन की आपूर्ति और उसके वितरण से सम्बन्धित कानूनों में परिवर्तन करते हुए प्रथम चरण में उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा, आन्ध्रप्रदेश, गुजरात, गोवा, कर्नाटक तथा तमिलनाडु में पांच प्रतिशत मिश्रित पेट्रोल की बिक्री अनिवार्य होगी। केन्द्रशासित प्रदेश चण्डीगढ़, दमन दीउ, दादरा नागर हवेली और पाण्डिचेरी में भी उपभोक्ता मिश्रित पेट्रोल का उपयोग आगामी नए वर्ष में करेंगे। दूसरे चरण में सम्पूर्ण देश में यह व्यवस्था लागू करने का विचार है। उक्त नौ राज्यों तथा चार केन्द्र शासित प्रदेशों में गत वर्ष में कुल 46 लाख टन पेट्रोल की खपत हुई थी जिसको 11,538 पेट्रोल पम्पों से वितरित किया गया। इस प्रकार वर्ष 2003 में इन राज्यों में 5 प्रतिशत मिश्रण के रूप में ही लगभग 30 करोड़ लीटर एथेनाल की आवश्यकता होगी।

एथेनाल का मुख्य स्रोत गन्ने के शीरे से बना जलविहीन अल्कोहल है। भारत सरकार इस निर्णय के पूर्व गैसोहल के उपयोग के देश में तीन पायलट प्रोजेक्ट सफलतापूर्वक संचालित कर चुकी है। महाराष्ट्र के मिराज जनपद सांगली, मनमाड जनपद नासिक तथा उत्तर प्रदेश के बरेली में गन्ने के शीरे से बने गैसोहल उत्पादन का सफल प्रयोग हुआ। इस परियोजना के अन्तर्गत 10 जनपदों में 329 पेट्रोल पम्पों के माध्यम से गैसोहल मिश्रित पेट्रोल का उपयोग किया गया जिसमें से 3 जनपद तथा 111 पेट्रोल पम्प उत्तर प्रदेश के थे। शीरे से बने जलविहीन अल्कोहल (गैसोहल) का उत्पादन उत्तर प्रदेश की बजाज हिन्दुस्तान गोला, हरगाँव तथा स्योहारा चीनी मिलों द्वारा किया जा रहा है। इन प्रयोगों की समीक्षा हेतु इन्टर मिनिस्ट्रियल टास्क फोर्स (आईएमटीएफ) का गठन हुआ। गैसोहल मिश्रित पेट्रोल के शोध एवं विकास हेतु आयल इण्डस्ट्री डेवलपमेन्ट बोर्ड ने जून 2002 में 7.26 करोड़ रुपया उपलब्ध कराया जिसमें से 4.01 करोड़ रुपया डीजल में एथेनाल मिश्रित कर उपयोग करने पर खर्च होगा। शोध एवं विकास का कार्य इण्डियन आयल कार्पोरेशन फरीदाबाद कर रहा है। ब्यूरो आफ इण्डियन स्टैण्डर्ड से 10 प्रतिशत गैसोहल पेट्रोल में मिलाने का अनुमोदन प्राप्त करने का प्रयास भी हो रहा है। भारत सरकार ने इस प्रकरण पर अति सक्रियता दिखाते हुए अप्रैल 2002 में ही वाहनों में एथेनाल मिश्रित पेट्रोल व डीजल (गैसोहल) के इस्तेमाल के तकनीकी पक्षों पर ब्राजील के अनुभवों का लाभ लेने के लिए एक सहमति पत्र (एमओयू) पर हस्ताक्षर किए थे जिसके परिणाम मिलने प्रारम्भ हो गए हैं।

विश्व के विकसित देशों में अल्कोहल को पेट्रोल में आक्सीजनेट व ईंधन के रूप में पर्यावरण संरक्षण, बहुमूल्य विदेशी मुद्रा में बचत एवं कार्बन ईंधन

के संरक्षण की दृष्टि से उपयोग किया जाना एक सर्वमान्य प्रविधि है। वर्तमान में पेट्रोल को वाहनों में उपयोग हेतु उपयुक्त बनाने के लिए आक्सीजनेट के रूप में कुछ रसायन जैसे मेथिल टर्शियरी ब्यूटिल ईथर (एमटीबीई) व टर्शियरी एथिल मेथिल ईथर (टीएएमई) आदि निश्चित अनुपात में मिलाने से पेट्रोल ईंधन में आवश्यक आक्टेन नम्बर प्राप्त हो जाता है। दूसरी ओर यह ईंधन के रूप में प्रयुक्त हो जाता है। केमिकल आक्सीजेनेट कैंसर कारक एवं पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है जबकि गन्ने के शीरे से बना गैसोहल पर्यावरण की दृष्टि से अत्यंत उपयुक्त एवं जैव अपघटनीय है। इससे इंजन की दहनशीलता बढ़ेगी, देश को 50 करोड़ लीटर पेट्रोल कम आयात करना होगा तथा इससे गन्ना किसानों व चीनी मिलों को भी लाभ होगा। इसलिए सरकार पेट्रोल बचाने तथा उत्सर्जन मानकों को बेहतर बनाने के लिए एथेनाल मिश्रित पेट्रोल (गैसोहल) के उपयोग को बढ़ावा दे रही है। भारतवर्ष में वार्षिक आवश्यकता के 70 प्रतिशत तक कच्चा तेल आयात हो रहा है। अब ओपेक देशों के द्वारा तेल के जो दाम तय किए जाते हैं उससे प्रतिवर्ष 85 हजार करोड़ रुपये का भारी बोझ देश की विदेशी मुद्रा पर पड़ रहा है। दूसरी ओर भारतवर्ष में 43 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में गन्ने की खेती हो रही है जिसमें अकेले उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में 21.52 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में किसान गन्ना उगाता है। 436 चीनी मिलें देश में कार्यरत हैं जिनमें से उत्तर प्रदेश में 101 चीनी मिलें हैं। गत वर्ष चीनी मिलों द्वारा देश में लगभग 79 लाख टन शीरे का उत्पादन हुआ था। अकेले उत्तर प्रदेश में शीरे पर आधारित 40 आसवनियाँ हैं जिनकी स्थापित क्षमता 7500 लाख बल्क लीटर है। उत्तर प्रदेश में ही केवल 5400 बल्क लीटर अल्कोहल इन आसवनियों से उत्पादित हो सकता है जबकि प्रदेश के अन्दर 1998–99 में अल्कोहल की अधिकतम खपत 3063 लाख बल्क लीटर हुई थी। अतः अनुमानतः उत्तर प्रदेश अकेले 2000 लाख बल्क लीटर अल्कोहल गैसोहल के लिए उपलब्ध करा सकता है। वर्तमान में इन आसवनियों का मात्र 30–35 प्रतिशत उपयोग हो रहा है। पेट्रोल में 10 प्रतिशत की सीमा तक यदि जलविहीन अल्कोहल मिश्रित करके उपयोग किया जाए तो वर्तमान मोटर इंजनों में किसी भी संशोधन की आवश्यकता नहीं होगी। सरकार के वर्तमान निर्णय से अब देश के प्रमुख गन्नाउत्पादक प्रदेश जैसे उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, पंजाब, हरियाणा, बिहार तथा कर्नाटक में शीरे का बेहतर उपयोग होगा तथा चीनी मिलों को अतिरिक्त आय अर्जित होगी जिसका सीधा लाभ गन्ना किसानों को बेहतर गन्ना मूल्य तथा उनकी सामयिक अदायगी के रूप में मिलेगा। देश में लगभग 1500 करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा भी बचाई जा सकेगी।

वस्तुतः पेट्रोल में गन्ने के शीरे से बने अल्कोहल मिश्रण (गैसोहल) का प्रयोग 1897 में ही प्रारम्भ हुआ था जब निकोलस ए आटो ने अपने प्रारंभिक इंजन के अध्ययन में इसका प्रयोग किया। ब्राजील पिछली शताब्दी के दूसरे दशक से इस ईंधन का प्रयोग कर रहा है। सातवें दशक के मध्य में एथेनाल जीवाश्म ईंधन का महत्वपूर्ण विकल्प बन गया। आज भी ब्राजील में 26 हजार पेट्रोल पम्पों से जलयोजित अल्कोहल व ईंधन गैसोहल की बिक्री हो रही है। इसी प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध में एथेनाल का पेट्रोल में मिश्रण कर भरपूर उपयोग हुआ। आज भी ब्राजील के अतिरिक्त अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, स्वीडेन जैसे विकसित देश इसका खुल कर उपयोग कर रहे हैं क्योंकि गैसोहल का प्रयोग पर्यावरण को स्वच्छ एवं सुरक्षित बनाता है। कार्बन मोनोआक्साइड से बहुत ही कम धुआँ निकलने तथा स्वच्छ ज्वलन गुणधर्म के कारण यह अत्यन्त लाभदायक है। महत्वपूर्ण बात यह है कि यह नवीनीकृत किया जा सकने वाला ऊर्जा का स्रोत है। इसे गन्ने के अपशिष्ट यानी शीरे से निकाला जाता है। अप्रयुक्त शीरा चीनी मिलों के पास सड़ कर प्रदूषण फैलाता है जबकि इससे बना गैसोहल भारत के उज्ज्वल भविष्य का स्वागत कर रहा है। यह कीमत में पेट्रोल की अपेक्षा आधी कीमत पर तैयार होता है। आज जहाँ पेट्रोल को युद्ध के हथियार के रूप में प्रयोग किया जा रहा है वहाँ अपने देश भारत में सहजता से उपलब्ध गन्ने से उत्पादित गैसोहल को स्वदेशी पेट्रोल के रूप में स्वीकार करना समय की माँग है।

मुख्य प्रचार अधिकारी
गन्ना विकास विभाग, उ0प्र0

पीठ या कमर दर्द

डॉ0 आर.सी. गुप्ता

अगर आप मनुष्य या दो पैरों पर चलने वाले जीवधारी हैं, उसमें भी अगर आप 'सभ्य' हो गए हैं और उसके बाद आप पढ़े–लिखे हैं, यदि आप अपनी आयु सीमा 40 वर्ष पार कर चुके हैं तो निश्चय ही आपको पीठ या क़मर दर्द साल में एक–दो दिन के लिए सताता होगा। शायद यही कारण है कि जहाँ जानवरों में कमर दर्द या उससे मिलते जुलते रोग प्रायः नहीं होते हैं और विश्व की बहुत सी जनजातियों में भी यह रोग नहीं के बराबर हैं वहीं न्यूयार्क में रहने वाली 9 प्रतिशत अमेरिकी जनता कमर दर्द से पीड़ित रहती है। भारत के आँकड़े तो मालूम नहीं हैं पर संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रतिवर्ष 62 अरब डालर की हानि केवल कमर दर्द के कारण होती है।

आखिर इस दर्द के कारण क्या हैं ?

सीधा खड़ा रहना : यह सत्य है कि मनुष्य भी आदिम काल में, अब से लाखों वर्ष पूर्व, चौपाया ही था। प्रकृति के विकास के साथ गोरिल्ला, चिम्पांजी और बंदर की तरह अन्य जातियों और उपजातियों में होने के बाद वह भी 'दो पाया' हो गया, अर्थात् वह चार पैरों की जगह दो पैरों से चलने लगा। इसका अर्थ हुआ कि पैरों के पंजों से मस्तिष्क तक का बोझ मेरुदण्ड (Spinal Column) पर पड़ने लगा। कशेरुकाओं और उनके बीच में स्थित 'इन्टरवर्टीब्रल डिस्क' (Intervertebral Disc) के ऊपर पड़ने लगा। शायद आप जानते ही हों कि रीढ़ या मेरुदण्ड में 33 कशेरुकाएं होती हैं, सात गर्दन या ग्रीवा में, बारह वक्ष या थोरेक्स में, पाँच पीठ, कटि या कमर में तथा उसके नीचे पाँच हड्डियों से बनी सेक्रम (Sacrum) तथा तीन हड्डियों के बीच पच्चीस 'ब्रुश' (Shock Absorber) होती हैं जिन्हें 'इन्टरवर्टिकुलर डिस्क' कहते हैं। इनका मुख्य कार्य शरीर पर पड़ने वाले सभी घात–आघात को निष्प्रभावी कर देना है। इसके अतिरिक्त इसी मेरुदण्ड में सुषुम्ना नाड़ी (Spinal Cord) स्थित रहती है, जो मस्तिष्क के नीचे वाले भाग से आरम्भ होकर ग्रीवा और वक्ष से होते हुए कटि के प्रथम कशेरुका पर समाप्त हो जाती है। पर इससे निकलने वाली सुषुम्ना नाड़ियाँ पूरे मेरुदण्ड में हर दो कशेरुकाओं के बीच से निकलती हैं।
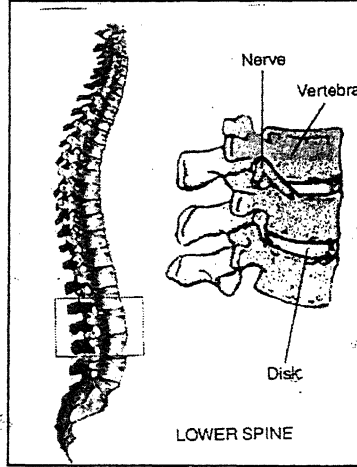
जैसे जैसे आदमी 'सभ्य' होता गया, पढ़–लिख गया और महानगरों में रहने लगा तो उसकी जीवन शैली में बहुत बड़ा परिवर्तन आया। पहले उसे अपना भोजन प्राप्त करने के लिए श्रम करना पड़ता था और उसका अर्थ था कि केवल उसकी हड्डी या अस्थि ही नहीं अपितु मांसपेशियाँ भी मजबूत होती थीं। किसी भी जोड़ या संधि (Joint) को चलाने के लिए यह आवश्यक है कि उस पर काम कर रही सभी मांसपेशियाँ मजबूत हों। यह सत्य है कि अगर फावड़ा चलाने के लिए अपने हाथ–पैरों को आगे झुकाना पड़ता है तो फावड़ा उठाने के लिए इसके विपरीत क्रिया भी करनी पड़ेगी। अर्थात् अगर पहली क्रिया में शरीर के सामने वाली मांसपेशियां संकुचित

होती हैं तो आगे वाली क्रिया में उसके विपरीत। चलना–फिरना, दौड़ना–भागना या खेलकूद आदि सभी क्रियाओं में मांसपेशियों को मजबूत और सुदृढ़ होने का मौका मिलता है। यह सही है कि कुछ विशेष खेलों में कुछ विशेष मांसपेशियों की अधिक आवश्यकता होती है पर आवश्यकता सबकी पड़ती है। यह भी सत्य है कि कुछ खेलों में आवश्यकता से अधिक कार्य शरीर को हानि का कारण बन सकता है पर इतना अवश्य है कि एक सीमा तक शरीर की सभी मांसपेशियों को कार्य कराना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है और जब ये व्यायाम या शारीरिक कार्य कम होते जाते हैं तो सभ्यता की निशानियाँ (जिसमें कमर दर्द भी एक है) बढ़ती ही जाती हैं। अमेरिका जैसे धनाढ्य देशों में शारीरिक श्रम कम से कम होता जा रहा है। एक औसतन सम्पन्न अमेरिकी व्यायाम के नाम पर केवल घर से गैराज (जो प्रायः घर के अन्दर ही होती है या पास ही होती है) तक फिर कार्यालय के कार पार्किंग स्थल से कार्यालय के अन्दर तक, औसतन यह शायद 2 से 5 मिनट तक का पैदल चलना होता है। और फिर होता है दफ्तर या कार्यालय में 7–8 घंटे झुककर कार्य करना। ऐसे में अगर अमेरिका की 9 प्रतिशत जनता कमर दर्द से पीड़ित रहती है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। शायद अब वहाँ की जनता शारीरिक श्रम की महत्ता को समझने लगी है और सप्ताह के छुट्टी के दो दिन शनिवार, रविवार को शारीरिक श्रम करके अपने को पीड़ामुक्त रखने का प्रयत्न कर रही है।

कमर दर्द का उपचार : यद्यपि कमर दर्द प्रायः किसी कार्य को झुककर उठाने में, जैसे– फर्श से भरा बक्सा उठाना या सरकाना, किसी ऊबड़–खाबड़ सड़क पर रिक्शा, जीप या इक्का से जाना अथवा काम करते समय किसी अप्रत्याशित दिशा में मुड़ने या झुकने पर आरम्भ होता है। इसका सबसे बड़ा और सही कारण है कि आपकी पीठ के मांसपेशियाँ और तन्तु सुदृढ़ नहीं हैं। अतः यह आवश्यक है कि ऐसा कमर दर्द होने पर आप विश्राम करें। अगर दर्द अधिक है तो कोई भी साधारण सी दर्दनिवारक गोली भोजन के साथ ले लें। ये गोलियाँ कभी भी खाली पेट न लें और दूसरी गोली तभी लें जब कम से कम आप एक बार पेशाब या मूत्र विसर्जन कर चुके हों। अगर हो सके तो दर्द वाले स्थान पर बर्फ या ठंडे पानी से सिंकाई करें। गरम पानी की सिंकाई और आज के विज्ञापनों में बताई गई कोई भी क्रीम, तेल का प्रयोग न करें। अधिकांश तेल, मरहम या 'जेल' रोग के अधिक दिनों या पुराने होने में ही लाभदायक हो सकते हैं। आराम करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि आराम ही क्षतिग्रस्त मांसपेशियों और तन्तुओं की मरम्मत करने में लाभप्रद है। शायद इससे बड़ा वैज्ञानिक असत्य कोई नहीं होगा। (विक्स मलिए........ काम पर चलिए, 'मूव' लगाओ .... आराम पाओ) क्योंकि ये सब टूटे हुए तन्तुओं की मरम्मत न कर त्वचा के ऊपरी भाग में रक्त भ्रमण तेज कर देते हैं जिससे पीड़ारहित होने का आभास होता है। इसी तरह पीड़ानाशक गोलियों का असर भी केवल छलावा है। गोलियों का प्रयोग भी कम से कम ही करें। प्रायः यह दर्द दो–तीन दिन में ही ठीक हो जाता है और आगे न हो इसके लिए आपको सबसे अच्छा है कि शारीरिक काम अपनी शारीरिक क्षमता के अनुसार बढ़ाते जाएँ तथा पीड़ानाशक दवाओं की मात्रा कम से कम करते जाएँ। शारीरिक श्रम कई प्रकार के हो सकते हैं और सभी लाभप्रद होंगे। अगर कर सकें तो नदी या पूल में तैराकी करें या फिर योगासन करें। यों तो योगासन अनेक हैं पर वे सभी विशेष कार्यों के लिए हैं। पीठ के रोगियों के लिए अर्द्ध सर्वांग, और धनुरासन सबसे अधिक लाभप्रद होने चाहिए। इसके लिए किसी अनुभवी और प्रशिक्षित व्यक्ति का मार्गदर्शन लेना पड़ेगा।

यदि आपकी कमर का दर्द कुछ दिनों के विश्राम और व्यायाम से ठीक न हो रहा है तो शायद आपको चिकित्सक की सलाह लेनी पड़ेगी। शायद आपकी कमर का दर्द गंभीर हो और गंभीर कमर दर्द के लक्षण होंगे –

1. कमर दर्द के साथ बुखार और ठंड लगना।

2. कमर दर्द के साथ शरीर का वजन कम होना।

शेष पृष्ठ 25 पर

पुनः प्रकृति की ओर

डॉ० मुरली मनोहर जोशी
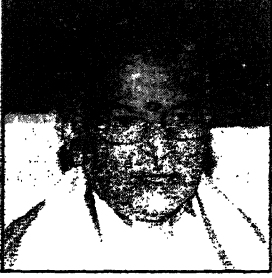
अनेक क्षेत्रों में गहन अनुसंधान की आवश्यकता है। सबसे पहले हमें पोषणक्षम ऊर्जा स्रोतों तथा समस्त रूपों में ऊर्जा के प्रभावी उपयोग पर अनुसंधान की समीक्षा की आवश्यकता है। हमें प्राकृतिक प्रणालियों के प्रबंधन, संरक्षण तथा उसके पुनः उत्पादन और साथ ही साथ अपशिष्टों के पुनः उपयोग पर अनुसंधान करना होगा। ऊर्जा के प्रभावी उपयोग के लिए पहले से विद्यमान प्रौद्योगिकियों के त्वरित संवर्धन हेतु एक कार्यक्रम प्रारम्भ करने और नवीन 'हरित' प्रौद्योगिकियों के विकास एवं प्रसार की भी आवश्यकता है। इस संबंध में मैं इस बात पर बल देना चाहूँगा कि आज विश्व भर में प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण के समझौते तथा नीतियों में पारदर्शिता का अभाव अनुभव किया जा रहा है। वास्तव में पोषणक्षम विकास पर होने वाली समस्त चर्चाओं और परिचर्चाओं में विकासशील देशों के लिए न्यायसंगत एवं अनुकूल शर्तों पर प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण पर बल दिया गया है। सन् 1992 का 'रीओ घोषणा पत्र' तथा अधिकतर बहुपक्षीय पर्यावरणीय समझौते इस प्रकार के प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण की आवश्यकता पर बल देते हैं। विश्व व्यापार संगठन समझौते की प्रस्तावना में विकास के विभिन्न स्तरों पर सदस्य देशों की आवश्यकताओं और रुचियों के अनुरूप पोषणक्षम विकास के लक्ष्यों की पुष्टि की गई है। तथापि विकासशील देशों द्वारा अपेक्षित हरित प्रौद्योगिकियों सहित अन्य प्रौद्योगिकियों को प्राप्त करने का वास्तविक अनुभव कटु है।

हमारी अनुसंधान और प्रौद्योगिकी योजनाओं में पूर्ण परिवर्तन लाए जाने की आवश्यकता है। उद्योग साधन सघन कही जाने वाली पेट्रोलियम और पेट्रोरसायन आधारित प्रयोगशालाओं का प्रयोग करते हैं। ये प्रणालियाँ पर्यावरण एवं सामाजिक तंत्र को गंभीर क्षति पहुँचाने वाले प्रदूषण, अम्ल वर्षा, हरित गृह गैसों आदि का कारण बनती हैं। यदि हम उच्च स्तर पर ऊर्जा एवं पदार्थों का प्रयोग करते हुए सघन उत्पादन शैलियों को अपनाते हैं तो हम पोषणक्षम उपभोग के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते। विशेष रूप से भारत के सन्दर्भ में मैं इस बात पर बल देना चाहूँगा कि हम पश्चिमी देशों में अपनाई जाने वाली शैलियों का अन्धानुकरण नहीं करें, अपितु स्वयं ऐसी प्रौद्योगिकियों का विकास करें जो कम तापमान एवं दबाव पर कार्य कर सकें तथा जिनमें ऊर्जा की कम खपत हो एवं प्रदूषण भी कम फैले।

हमें 'पुनः प्रकृति की ओर' के मंत्र पर निर्भर होना होगा। इससे तात्पर्य उपभोग की अपनी आदतों और शैलियों में परिवर्तन लाना मात्र ही नहीं अपितु उस प्रक्रिया पर भी दृष्टि डालना है, जिसके द्वारा प्रकृति हमारी प्रौद्योगिक विकास की कार्यनीतियों को साकार रूप प्रदान करने में हमारी सहायता करती है। उदाहरणतः प्राकृतिक अभिक्रियाएँ कमरे के तापमान व वायुमण्डलीय दबाव में होती हैं। ये प्रक्रियाएँ सौर ऊर्जा से चालित होती हैं और उत्कृष्ट संरचनाओं का निर्माण करती हैं। वृक्ष सूर्य की रोशनी, जल तथा वायु को सेल्यूलोज़ में परिवर्तित करते हैं, लकड़ी बनाते हैं, जो कंकरीट अथवा स्टील से भी लचीली व कठोर एक प्राकृतिक सम्मिश्र है। मकड़ी जो सिल्क बनाती है, वह अत्यधिक संक्षारक प्रणालियों और अत्युच्च तापमान पर बनाए गए सिंथेटिक रेशों के समान ही मजबूत और कठोर होती है। फिर भी प्रकृति के अनुकरण की जिज्ञासा से प्रेरित बहुत अनुसंधान कार्य मेरी जानकारी में नहीं आए। ऐसे कार्यक्रमों को व्यापक स्तर पर प्रारम्भ करने की आप से पुरजोर अपील है।

समाजविज्ञानियों एवं प्रकृतिविज्ञानियों को उद्योगों व सरकार के साथ मिलकर काम करना चाहिए

तथा वैज्ञानिकों को उपभोग व्यवहार के कारणों और पहलुओं को अवश्य समझना चाहिए। वे पर्यावरणीय प्रभावों का पता लगाने के लिए संसूचकों एवं संकेतकों का विकास भी कर सकते हैं और इन संसूचकों को उपभोक्ता प्रवृत्तियों से जोड़ें, तनाव के प्रति पर्यावरणीय एवं सामाजिक तंत्र की समझ बनाएँ और विभिन्न नीतियों की प्रभावक्षमता को विश्लेषित करें।

प्रकृति के साथ सहभागिता एवं सहजीवन 21वीं शताब्दी का आह्वान है। ऐसा करने के लिए हमें अपनी मूल्यांकन की व्यवस्थाओं को बदलना होगा और अपने मूल्यों को भी। उदाहरणतः हम आर्थिक विकास के सकल राष्ट्रीय उत्पाद, सकल घरेलू उत्पाद जैसे परम्परागत संसूचकों के अभ्यस्त हैं। मैं इस बात पर बल देना चाहता हूँ कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद के संसूचक में पोषणक्षमता की गणना नहीं होती। अनेक उन्नत राष्ट्रों ने अपने सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि की है, जबकि यदि आर्थिक उत्पादन में से पर्यावरणीय एवम् सामाजिक लागत को घटाकर देखा जाए तो ज्ञात होता है कि वास्तविक प्रगति बहुत कम है। उदाहरण के लिए वर्ष 1976–1998 की 22 वर्ष की अवधि के दौरान अमेरिका के प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पादन में 49 प्रतिशत की वृद्धि हुई। परन्तु जब पर्यावरणीय एवं सामाजिक लागत को शामिल किया गया तो प्रतिव्यक्ति वास्तविक प्रगति 30 प्रतिशत कम हो गई थी। क्या हमें सकल प्राकृतिक उत्पाद अथवा यहाँ तक कि सकल पर्यावरण उत्पाद के नए संसूचकों के बारे में नहीं सोचना चाहिए ? ऐसे संसूचक न केवल विकास की दर के मापक होंगे अपितु पोषणक्षम उपभोग का समर्थन करने वाली पर्यावरण की दृष्टि से स्वस्थ कार्यनीतियों का निर्देश भी करेंगे।

केन्द्रीय मंत्री
भारत सरकार
मानव संसाधन विकास
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा
महासागर विकास विभाग

पृष्ठ 23 का शेष

3. गंभीर चोट।
4. पैरों में झनझनाहट और कमजोर होना।
5. मलमूत्र विसर्जन में कष्ट या विकृति।
6. कमर या पेट में भयंकर सूल या पीड़ा।

अगर इनमें से कोई भी लक्षण हैं तो आप अपने चिकित्सक से मिलें। हो सकता है कि वह पूर्ण परीक्षण के बाद आपके रक्त और मूत्र की जाँच तथा एक्सरे कराएँ और विशेष परिस्थितियों में MRI (Magnetic Resonance Imaging) भी कराएँ। यहाँ यह स्पष्ट कर दें कि X-ray या MRI में आए हुए बदलाव केवल लक्षण मात्र हैं। यह आवश्यक नहीं है कि वह पीड़ा के कारण ही हों। यह सत्य है कि X-ray या MRI में पाई गई जानकारी पीड़ा का कारण हो सकती है पर सदैव ऐसा नहीं है। अब विश्व के सभी विशेषज्ञ मानने लगे हैं कि X-ray या MRI पर शल्य चिकित्सा करना उचित नहीं है। ऐसे रोगियों में शल्य क्रिया के बाद प्रारम्भिक स्वास्थ्य–लाभ शीघ्र होता है लेकिन 4 वर्षों के गहन अध्ययन के बाद पाया गया कि कमर दर्द के रोगियों में शल्यक्रिया और बिना शल्यक्रिया के परिणामों के कोई अन्तर नहीं था। एक और विशेष अध्ययन में जो 10 वर्षों तक चले, कमर दर्द का शल्यक्रिया और बिना शल्यक्रिया के उपचारों के परिणाम लगभग एक सा ही था। यहाँ एक बात और स्पष्ट कर दें कि शल्यक्रिया के बाद भी व्यायाम करना आवश्यक हो जाता है। अतः आवश्यक है कि मनुष्य पीड़ारहित होने के लिए 'चौपाया' तो नहीं हो सकता, पर अगर उसे व्यायाम और शारीरिक क्रियाएँ करनी पड़ें, उसके लिए कुछ 'असभ्य' अर्थात् 'शारीरिक कार्य करने वाला' भी बनना पड़े तो अधिक लाभदायी होगा।

78–बी, टैगोर टाउन
इलाहाबाद

आत्मचिन्तन लेखमाला–3

शिक्षा संस्थाओं में पठन–पाठन तथा शोध का आनन्दातिरेक

डॉ0 रामचरण मेहरोत्रा

गुरु गोविन्द दोऊ खडे, काके लागों पाय ?
बलिहारी गुरु आपनो, जिन गोविन्द दियो बताय ।

समस्त स्तरों पर किसी भी पठन–पाठन कार्यकलाप में गुरु–शिष्य परम्परा का महत्व सर्वोपरि है। गुरुकुलों तथा हमारी प्राचीन नालंदा एवं तक्षशिला ऐसे उच्च विद्यालयों से लेकर आज के जगतप्रसिद्ध कैम्ब्रिज, हारवर्ड विश्वविद्यालय अथवा इण्डियन इंस्टीट्यूट्स ऑफ टेक्नोलॉजी सभी शिक्षा संस्थान इसी परंपरा से आच्छादित हैं। गत शताब्दी के अंतिम वर्षों से ज्ञानवर्द्धन में कम्प्यूटरों के बढ़ते हुए योगदान के फलस्वरूप इस परम्परा पर जो प्रश्नचिन्ह लगते दिख रहे थे, वे क्रमशः धूमिल होते जा रहे हैं और स्पष्ट होता जा रहा है कि मानव विकास की दिशा में गुरु–शिष्य के पारस्परिक आदान–प्रदान का कोई विकल्प हो ही नहीं सकता।

इस निबंध के लेखक की भाँति जिन व्यक्तियों को सौभाग्यवश कर्मठ एवं योग्य अध्यापकों के आलोकपूर्ण सम्पर्क से सतत् ज्ञान पिपासा की भावना जाग्रत हो गई हो, वे सब तो ज्ञानार्जन में कभी थकेंगे ही नहीं, वरन् इस आलोक से अपने उत्तरदायित्वों में तथा अपने सम्पर्क में आने वाले समाज को लाभान्वित करते ही रहेंगे। यदि ऐसे व्यक्ति आगामी जीवन में अध्यापन कार्य करने लगते हैं तो वे शिक्षा संस्थानों में अपने विद्यार्थियों की पीढ़ियों एवं नए अध्यापकों के लिए प्रेरणा स्रोत बन जाते हैं और यह शृंखला आगे चलती रहती है। अपने विद्यार्थियों की आशातीत सफलता से गुरु का हृदय तो प्रफुल्लित होता ही है, साथ ही विद्यार्थियों के मन आभार तथा आदर की भावनाओं से गुरु–शिष्य परम्परा में एक नई कड़ी जुड़ती जाती है।

आरम्भ से ही अति उच्चकोटि के गुरुओं के सम्पर्क में आने से लेखक लाभान्वित तो हुआ था, परन्तु अध्यापकों की वेतन शृंखलाएँ एवं जीवननिर्वाह के लिए सुविधाएँ इतनी कम थीं कि तत्कालीन अन्य नवयुवकों की भाँति प्रतियोगी परीक्षाओं में सफल होकर सरकार की प्रशासनिक नौकरी करना ही उसका ध्येय था। संयोग से सन् 1942 में गांधी जी के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में सहसा ही सम्मिलित हो जाने से उसकी आकांक्षाएँ ही परिवर्तित हो गईं। सौभाग्यवश तत्कालीन अतिप्रसिद्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उसे अध्यापन कार्य भी मिल गया। प्रस्तुत लेख में लगभग 6 दशक लम्बी इस सुखद यात्रा के आनन्दातिरेक की भावना को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जिससे देश एवं ज्ञान के वातावरण में गुरु शिष्य परम्परा के विकास में उभरती हुई कमियाँ शायद कुछ दूर हो सकें।

प्रस्तुत निबन्ध का प्रादुर्भाव भी एक अप्रत्याशित ढंग से हुआ है। सन् 1949 में जगत प्रसिद्ध रसायनज्ञ आचार्य सी.एन. राव द्वारा नवस्थापित केमिकल रिसर्च सोसाइटी और सन् 2000 में हमारे देश की 'इण्डियन केमिकल सोसाइटी' ने अपनी प्लेटिनम जुबली के अवसर पर रसायन विज्ञान की जीवनपर्यन्त सेवा के लिए मुझे चुना था और इस अवसर पर मुझे अपनी उपलब्धियों पर लेख लिखने के लिए प्रोत्साहित किया था। मैं अपने गुरुओं और साथ ही साथ मेधावी विद्यार्थियों के योगदान से अभिभूत हूँ और इस लेख में इन्हीं तथ्यों का उल्लेख करने का प्रयास किया गया है। इन अनूठी उपलब्धियों में यदा कदा आत्मश्लाघा सी प्रतीत हो तो, उसके लिए आरम्भ में ही क्षमायाचना मेरे लिए उचित होगा। यथार्थ तो यह है कि व्यक्तिगत अनुभूतियों के रूप में व्यक्त यह गाथा उन सहस्त्रों शिक्षकों तथा लाखों विद्यार्थियों की

प्रतिक्रियाओं को परिलक्षित करती है जिनसे लेखक को मनन–चिन्तन करने का अवसर लेखक को प्राप्त हो चुका है।

शिक्षा यात्रा

पिछले दो तीन दशकों से तो सब ओर प्रारम्भिक शिक्षा में तड़क भड़क और धन के बाहुल्य का प्रभाव उभर कर आ रहा है। लेखक की चौथी कक्षा तक की आरम्भिक शिक्षा कानपुर में उसके घर से एक फर्लांग स्थित एक म्यूनिसिपिल स्कूल में हुई थी जहाँ उसे केवल 2–3 पैसे प्रतिमाह फीस देनी पड़ती थी। विद्यार्थी टाट की पट्टी पर और अध्यापक एक स्टूल पर बैठते थे। गणित, हिन्दी और अंग्रेजी मुख्यतः स्कूल के हेडमास्टर त्रिपाठी जी पढ़ाते थे। तीनों विषयों में पढ़ाई अच्छे स्तर की थी, परन्तु अंकगणित में तो कक्षा 4 उत्तीर्ण करने तक विद्यार्थियों में 9–10 साल की उम्र में इतनी दक्षता आ गई थी कि तत्कालीन प्रसिद्ध चक्रवर्ती द्वारा लिखित अंकगणित में सम्मिलित कठिन विषयों (उदाहरण के लिए चक्रवृद्धि ब्याज) के प्रश्न हल करने में कोई भी कठिनाई नहीं प्रतीत होती थी। सच तो यह है कि उसके बाद अंकगणित में लेखक ने जीवनपर्यन्त कुछ नया सीखा ही नहीं, साथ ही गणित की ओर उसकी रुचि जीवन भर बनी रही। लेखक के हृदय में भी अपने इतने कर्मठ गुरु के प्रति गहरी श्रद्धा हो गई थी और उनके दर्शन वह बराबर कानपुर जाने पर करता रहता था। सन् 1975 में जब लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय का कुलपति था, तो वे अपनी पोती के विवाह के लिए आए थे। लेखक से जो भी सहायता बन पड़ी थी उसको देना तो स्वाभाविक ही था। 2–3 दिन बाद जब वह लेखक की गाड़ी वापस करने स्वयं विश्वविद्यालय आए तो संयोगवश 150–200 विद्यार्थी अपनी किसी समस्या के समाधान के लिए कुलपति का घेराव कर रहे थे। लेखक ने ज्यों ही उनको गाड़ी से उतरते देखा तो उसने विद्यार्थियों की भीड़ को तितर बितर कर उनके पास पहुँच गुरु जी को साष्टांग प्रणाम किया। विद्यार्थियों में तो फुसफुसाहट फैल गई और शायद सचिव ने उन्हें बता दिया कि ये धोती–कुर्ता धारी वृद्ध कुलपति जी के स्कूल के गुरु हैं। विद्यार्थियों पर जादू का सा प्रभाव पड़ा और वे अपने नारे आदि भूलकर क्षणों में तितर–बितर हो गए। वैसे भी वे अपने कुलपति से कुछ प्रभावित थे, क्योंकि टेलीविजन पर वह अपने नए कुलपति का कुछ संवाददाताओं के साथ इंटरव्यू देख चुके थे जिसमें उन्होंने स्वयं कुछ कक्षाएँ पढ़ाने का अपना इरादा व्यक्त किया था। आश्चर्यचकित 'क्यों' के उत्तर में कुलपति जी ने समझाया कि सच्चा अध्यापक सदा विद्यार्थी बना रहता है और इस प्रकार के कार्यकलाप से विद्यार्थियों की भावनाओं से कुछ परिचित बने रह सकेंगे।

हाँ, तो इतने श्रेष्ठतम गुरु से चौथी कक्षा तक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् लेखक का दाखिला घर से निकट ही क्राइस्टचर्च स्कूल में करवा दिया। प्रवेश परीक्षा में अन्य सब विषयों (गणित, अंग्रेजी आदि) में 5 में 4 से अधिक अंक मिले, परन्तु हिन्दी के अध्यापक जी ने 5 में से 1 अंक ही प्रदान किया। मैं इससे अत्यन्त दुखी था क्योंकि मैंने बहुत हठ करके अपने पिता जी को राजी किया था कि मैं परिवार का प्रथम ऐसा सदस्य हूँगा, जो हिन्दी माध्यम से शिक्षा ग्रहण करेगा। पिताजी स्वयं उर्दू, फ़ारसी के अच्छे विद्वान थे और उन्होंने छुटपन से ही मुझे इबरतनामा और शेख सादी की शायरी पढ़ा रखी थी। पिता जी स्कूल के उर्दू शिक्षक को जानते थे क्योंकि मुझसे चार साल बड़े भाई को उर्दू विषय के साथ स्कूल में दाखिल करवा चुके थे। अतएव वे मुझे मौलवी साहब के पास ले गए, जिन्होंने सहर्ष 5 में से 1.75 अंक दे दिए और मेरा स्कूल में दाखिला हो गया। मैं उन पण्डित जी का बहुत आभारी हूँ कि उनके कारण मुझे एक अन्य भाषा उर्दू का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिला। हिन्दी तो अपनी मातृभाषा है और इतनी सुगम्य है कि उसका ज्ञान तो स्वतः ही प्राप्त हो गया है।

क्राइस्टचर्च स्कूल अपनी खेलकूद की प्रतियोगिताओं के लिए अधिक प्रसिद्ध था। यद्यपि मैं किसी टीम में तो नहीं पहुँच सका परन्तु नित्य ही कालेज फील्ड में विभिन्न खेलों का आनन्द लेता रहा। पाँचवीं कक्षा में प्रथम तिमाही परीक्षा में क्लास में प्रथम आया, तो यह शृंखला ही बन गई। स्कूल के हेडमास्टर एक अंग्रेज श्री सिरिल डेविड वुड मुझसे बहुत स्नेह करते थे। अन्य बहुत से अध्यापकों का भी लाडला बन गया था। गणित के शिक्षक श्री विश्वनाथ वाजपेयी जी तो मुझसे बहुत ही स्नेह करते थे, नवम्बर 1936 में वह

हमारी दसवीं कक्षा में पढ़ाने के लिए एक नए विद्यार्थी के साथ आए और कक्षा के दरवाजे से ही बोले कि "रामचरण, देखता हूँ कि तुम अब कक्षा में प्रथम कैसे आते हो।" मेरी प्रश्नात्मक क्षमायाचना पर उन्होंने बतलाया कि उनके साथ स्कूल में नया भरती हुआ विद्यार्थी हरिश्चन्द्र अपने इंजीनियर पिता जी के बारम्बार ट्रांसफरों के कारण पिछले दो सालों में विभिन्न शहरों के तीन अच्छे स्कूलों में अध्ययन करके आया है और सभी स्कूल में अपनी कक्षा में प्रथम आता रहा है। न मालूम कैसे मुझे अपने इतने आदरणीय गुरु जी की बात हृदय में चुभ गई और मैंने अपनी पढ़ाई में बहुत अधिक परिश्रम करना आरम्भ कर दिया और दिसम्बर की छमाही परीक्षा में किसी प्रकार प्रथम आ ही गया परन्तु इस बार द्वितीय आने वाले विद्यार्थी हरिश्चन्द्र से मेरे कुछ अंक अधिक आए थे। इस प्रकार मुझमें एक नई प्रतिस्पर्धा का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे आगामी जीवन की सफलता में बहुत सहायता मिली।

आजकल शिक्षा–संस्थाओं में गलाघोंटू प्रतिस्पर्द्धा तो कभी कभी विद्यार्थियों को कुण्ठित सी कर देती है, परन्तु सीमित प्रतिस्पर्द्धा शिक्षार्थियों को भरसक प्रयत्न करने के लिए प्रोत्साहित करती है। यही हुआ, इस नवजनित प्रतिस्पर्द्धा के कारण क्रमशः स्वाध्याय में अधिक एकाग्रता से परिश्रम करना स्वभाव का एक अंग ही बन गया और अगले 3–4 महीनों का फल बोर्ड की हाईस्कूल परीक्षा में प्रथम श्रेणी ही नहीं, वरन् पूरे प्रदेश में तीसरा स्थान प्राप्त करने के रूप में परिलक्षित हुआ, हरीश को भी प्रथम श्रेणी में प्रदेश में सोलहवाँ स्थान मिला।

संयोग से हम दोनों ने कानपुर के दो भिन्न कालेजों में प्रवेश लिया, हमें तो नहीं पता चला परन्तु दोनों कालेजों के प्रिंसिपलों में होड़ सी लग गई कि हम दोनों में कौन बोर्ड में प्रथम स्थान प्राप्त कर पाएगा। बोर्ड की इण्टरमीडिएट परीक्षा में हम दोनों ही क्रमशः पहले और आठवें स्थान पर आए। इस सम्बन्ध में एक घटना याद आती है। मैंने गणित के अपने तीनों प्रश्नपत्रों के उत्तर में प्रश्न पत्र में दिए सब ग्यारह सवाल क्रमवार हल करके लिख दिया था कि कोई भी सात प्रश्न देख लिए जाएँ। प्रथम प्रश्नपत्र को मेरे सह–प्रिंसिपल सेठजी ने सेट किया था और संयोग से मेरी परीक्षा कापी जिसमें उनके सहपरीक्षक ने 33/33 अंक दिए थे उनको प्रधान परीक्षक के रूप में नमूने की पाँच कापियों में भेज दीं। सेठ जी ने कई वर्षों बाद मुझे बताया था कि उन्होंने मेरी लिखावट से अनुमान लगा लिया था कि वह कापी मेरी ही है। उन्हें कुछ चिन्ता हुई थी कि हरीश के कालेज के प्रिंसिपल खन्ना जी शायद उन्हें बदनाम करें कि उन्होंने मुझे प्रश्नपत्र 'आउट' कर दिया था, उस समय तो मुझे समझ में नहीं आया था परन्तु सेठ जी ने मुझसे बातों ही बातों में पूछा भी था कि क्या तुमने गणित के तीनों प्रश्नपत्रों में 11 के 11 सवाल हल किए हैं। परीक्षाफल आने पर मुझे प्रथम श्रेणी में प्रथम घोषित किया गया था और प्राप्तांक सर्टिफिकेट से स्पष्ट था कि गणित में मुझे शत–प्रतिशत अंक प्रदान किए गए थे, यह देखकर उन्हें शान्ति हुई थी क्योंकि केवल प्रथम पत्र ही के प्रश्न मुझको 'आउट' करने का दोषारोपण किया जा सकता था।

बी.एस–सी. के लिए हम दोनों ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। संयोग से हम दोनों एक ही सेक्शन में रख दिए गए थे। विश्वविद्यालय में मुझे पहली बार यह बोध हुआ कि हरीश मुझसे कहीं अधिक कुशाग्र बुद्धि वाला है, जैसे कि आगे चलकर सिद्ध भी हुआ कि अमेरिका के सुप्रसिद्ध प्रिंसटन विश्वविद्यालय में रहते हुए उन्होंने गणित शास्त्र के क्षेत्र में इतना उच्चकोटि का कार्य किया कि उनकी गणना संसार भर के तीन–चार अग्रणी गणितज्ञों में होने लगी। मैंने एम.एससी. में रसायन शास्त्र को चुना और भौतिक रसायन में फाइनल कक्षा में पढ़ ही रहा था और साथ ही आई.ए.एस. आदि की तैयारी कर रहा था कि 12 अगस्त 1942 को अचानक ही एक घटना घटी जिसने मेरे जीवन की राह ही बदल दी। 9 अगस्त 1942 से आरम्भ 'भारत छोड़ो आन्दोलन' (क्विट इंडिया) ने देश भर में क्रांति का वातावरण पैदा कर दिया था। मैं अपने बनर्जी होस्टल की दूसरी मंजिल में अपने निकट के मित्रों, अपने से 1 वर्ष अग्रणी शोध छात्रों अजित राम वर्मा और अवध बिहारी भाटिया के साथ बतिया रहा था कि सामने सड़क पर जाते हुए एक जुलूस के नारे सुनाई दिए। न मालूम कैसे हम तीनों में जोश की एक लहर आई और अपने अपने कमरे बन्द करके सड़क पर पहुँच कर जुलूस में शामिल हो गए। जुलूस का ध्येय था

निकट ही स्थित कचहरी पहुँच कर उस पर तिरंगा झंडा फहराना। कचहरी पहुँच कर नारे लग ही रहे थे। लाठी चार्ज और गोली चलाने का आदेश हुआ, जुलूस के सब लोग गोलियों से बचने के लिए जमीन पर लेट गए। फुसफुसाहटों में खबर आई कि कचहरी के पिछले भाग में झंडा फहराने हेतु छप्पर पर चढ़ते हुए एक विद्यार्थी लाल पद्मधर सिंह को पुलिसवालों ने गोलियों से भून दिया। भीषण लाठी चार्ज हुआ, जुलूस तितर–बितर हो गया और टुकड़ियों में बँट कर सिविल लाइन्स की ओर बढ़ गया। भाटिया और पाँच–सात अन्य विद्यार्थियों के साथ गिरफ्तार करके कोतवाली ले जाए गए जहाँ हम लोगों की बड़ी ठुकाई हुई। हमारे मना करने पर भी भाटिया और मुझे पुलिस जीप से यूनिवर्सिटी के पास छोड़ दिया गया, बाद में पता चला कि भाटिया के बड़े भाई श्री कृष्ण बिहारी भाटिया उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव थे जिसके कारण हम दोनों को जबरन रिहा कर दिया गया। साथी तो सब चले गए परन्तु मैं सामने झा होस्टल के हेमवती नन्दन बहुगुणा और कुछ अन्य मित्रों के साथ छिपे छिपे आन्दोलन में भाग लेता रहा। इस सबकी दीर्घकालीन प्रतिक्रिया यह हुई कि मैंने सरकारी नौकरी का इरादा बिल्कुल त्याग दिया।

अध्यापन एवं शोध कार्य

इतने श्रेष्ठ गुरुजनों के सम्पर्क के कारण अध्यापन कार्य की प्रवृत्ति तो आरम्भ से ही थी। अतएव सरकारी नौकरी का मोह छूट जाने के बाद कहीं भी अध्यापन में लग जाना चाहता था। किसी बड़े आदमी की सिफारिश तो मेरे पास थी नहीं, फिर भी सोचता था कि उच्चतम शैक्षणिक योग्यता के आधार पर किसी छोटे मोटे कालेज में तो कार्य मिल ही जाएगा। एक साल तो मेरठ में विज्ञान कला भवन में कार्य किया। जिसका उद्देश्य था हिन्दी के माध्यम से विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान के साथ किसी विशिष्ट तकनीकी कार्यक्रम में दक्ष विद्यार्थी अपने बलबूते पर कुछ उत्पादन करके जीवन निर्वाह कर सकें। भौतिक रसायन की कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं थी, अतएव सात–आठ महीनों में उसकी पाण्डुलिपि तैयार कर दी। परन्तु इस बीच 1942 के आन्दोलन में एक सहयोगी अजय माथुर की गिरफ्तारी हुई और उसकी डायरी में मेरे कारनामों का भी उल्लेख पाकर दौराला–मेरठ की पुलिस ने इतना तंग करना शुरू कर दिया था कि मैं वहाँ से इलाहाबाद वापस चला आया।

सौभाग्य से जुलाई 1944 से इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अकार्बनिक रसायन के प्रवक्ता की नौकरी मिल गई। तत्कालीन विभागाध्यक्ष किन्हीं कारणों से मेरी नियुक्ति के खिलाफ थे और उन्होंने मुझे शायद नालायक सिद्ध करने के लिए एम.एस–सी. उत्तरार्द्ध की अकार्बनिक शाखा की कक्षाएँ भी दे दीं जिस स्तर पर तो मैं केवल भौतिक रसायन पढ़ा था। दैवी कृपा से मैंने हिम्मत नहीं हारी और दिन रात अकार्बनिक विषयों के अध्ययन में जुट गया। भौतिक रसायन का ज्ञान भी अकार्बनिक प्रक्रियाओं को अधिक सुगमता से समझने–समझाने में सहायक हुआ। उन दिनों में भी विश्वविद्यालय के वक्ता पद के लिए डाक्टरेट लगभग आवश्यक थी और धीरे धीरे अकार्बनिक रसायन के गूढ़ अध्ययन से इस ओर मेरी रुचि भी बढ़ गई थी। भारतवर्ष में भौतिक तथा कार्बनिक रसायन पर पर्याप्त अनुसंधान हो चुका था परन्तु उस समय तक कलकत्ता विश्वविद्यालय के आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र रे तथा प्रियदा रन्जन रे के अतिरिक्त इस शाखा में अनुसंधान नगण्य था। कलकत्ते से भी कुछ सहायता न मिल पाने के कारण मैंने अपना ध्यान पठन–पाठन की ओर अधिक केन्द्रित किया। विद्यार्थी मुझसे बहुत प्रसन्न थे क्योंकि हमउम्र होने के कारण मेरे साथ उनका मैत्री–सम्बंध था और मैं भी उनकी कठिनाइयाँ दूर करने का भरसक प्रयास करता था, वह भी मुझसे प्रभावित थे और मुझे भी उनके साथ पठन–पाठन में बहुत आनन्द मिलता था। मैं उनको प्रोत्साहित करता था कि कक्षा में मुझसे प्रश्न पूछें और यथाशक्ति उनके संदेहों के स्पष्टीकरण का भरसक प्रयास करता था, कभी कभी यह कहने में नहीं हिचकिचाता था कि उनके प्रश्न का उत्तर मुझे नहीं मालूम है और पुस्तकों तथा प्रकाशित शोध साहित्य का अध्ययन करके अगले दिन उनको उत्तर बताने का प्रयत्न करूँगा। संयोग से कई बार ऐसा भी हुआ कि उनके प्रश्नों का उत्तर कहीं नहीं मिलता था, तो मैं स्वयं नए प्रयोग करके उनके उत्तर ढूँढने में लग जाता था। इस वातावरण में यह मेरी अनूठी उपलब्धि थी। विद्यार्थियों के अनबूझे प्रश्न ही मेरे

अनुसंधान के आधार बन गए और मैंने उसी से प्राप्त उपलब्धियों को अनेकानेक शोध लेखों के रूप में प्रकाशित किया तथा उन्हीं विषयों पर थीसिस लिखकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 1948 में डी.फिल. डिग्री प्राप्त की।

एम.एस–सी. उत्तरार्द्ध के विद्यार्थियों को मैं 'अधिशोषण सूचकों' के बारे में पढ़ा रहा था। इनकी गवेषणा जर्मन रसायनज्ञ फ्राइण्डलिश ने की थी और सौभाग्यवश मुझे 1943 में प्रकाशित उन्हीं का एक लेख मिल गया था, जिससे लगभग 20 सूचकों की एक सूची मैंने विद्यार्थियों को दी जिनमें लगभग सभी थैलिक अम्ल के व्युत्पन्न थे। सूची देख कर एक विद्यार्थी बनर्जी ने जो आगे चलकर पिलानी में विभागाध्यक्ष बने, प्रश्न पूछा कि क्या थैलिक की तरह अन्य द्विभास्मिक अम्लों से बने कोई सूचक नहीं उपयोग किये जा सकते ? प्रश्न स्वाभाविक था क्योंकि कार्बनिक रसायन के डाक्टर शिखीभूषण दत्त ने उन्हीं पर खोज की थी और विद्यार्थियों को उनके बारे में विस्तार से पढ़ाया था। मेरा उत्तर था कि यह तालिका पूरी होनी चाहिए क्योंकि इनके गवेषक के साल भर पहले छपे लेख से ली गई है, तथापि मैंने रासायनिक खोज पत्रिकाओं को खोज डाला और अगले दिन उसी बात की पुष्टि की। डॉ. दत्त कुछ मास पहले ही इलाहाबाद से दिल्ली विश्वविद्यालय चले गए थे और मुझे उनका कमरा ही बैठने के लिए दिया गया था जिसमें उनके द्वारा संश्लेषित दर्जनों ऐसे व्युत्पन्न थे। मैंने दूसरे ही दिन उनमें से एक 'सक्सिनिक फ्लोरोसिन' का उपयोग किया और देखा कि वह भी फ्राइण्डलिश के 'थैलिक फ्लोरोसिन' की ही तरह अधिशोषण सूचक का कार्य करता था। मैंने इस विषय पर विस्तृत अध्ययन किया और दर्जनों नए सूचकों पर खोज पत्र अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित किए। तीन–चार वर्ष बाद बरेली कालेज के एक वरिष्ठ अध्यापक टण्डन ने मुझसे अपने डाक्टरेट बनने के लिए विषय जानना चाहा तो मैंने यही विषय उनको बता दिया क्योंकि इसके लिए कोई विशेष उपकरण की आवश्यकता नहीं पड़ती। टण्डन के शोध प्रबन्ध की परीक्षक उनके काम से इतनी प्रसन्न हुईं कि उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि इस विषय पर एक समीक्षा लेख लिखूँ जो उनके द्वारा सम्पादित प्रसिद्ध मैगजीन 'टैलेण्टा' में प्रकाशित हुआ।

लगभग उसी बीच बी.एस–सी. के विद्यार्थी ने मुझसे प्रश्न किया कि सोडियम फास्फेट कठोर पानी को मृदुल कैसे बना देता है ? ढूँढने पर मुझे ज्ञात हुआ कि इसकी भी कोई जानकारी उपलब्ध शोध साहित्य में नहीं है, अतएव मैंने इस पर खोज आरम्भ कर दी और इन्हीं उपर्युक्त दो विषयों पर अपनी डाक्टरेट की डिग्री प्राप्त की। आगे चलकर मेरे तीन विद्यार्थियों ने भी इसी विषय पर डाक्टरेट प्राप्त की और सन् 1974 में प्राग में आयोजित एक अन्तर्राष्ट्रीय कांफ्रेंस में मुझे इस विषय एक विशिष्ट आमन्त्रित भाषणकर्ता के रूप में आदर मिला।

पिछले 60 साल के अध्ययन में तथा शोधकार्य में मुझे ऐसे दर्जनों अनुभव प्राप्त हो चुके हैं, परन्तु इन सबका निष्कर्ष यही है कि विद्यार्थियों को प्रत्येक विषय इस प्रकार पढ़ाना चाहिए कि उनमें अधिक जानने की जिज्ञासा पैदा हो और उन सन्देहों के स्पष्टीकरण के लिए प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, जिससे कभी कभी बिल्कुल नयी विचारधारा का शुभारम्भ हो सकता है। इस प्रकार के पठन–पाठन एवं शोध कार्य में आनन्दातिरेक की अनुभूति स्वाभाविक ही जनित हो जाती है।

गुरु–शिष्य के पारस्परिक ऐसे पूरक सम्बंधों के उदाहरण तो मुझे दर्जनों मिले हैं, परन्तु मुझे इस बारे में नोबल पुरस्कारविजेता सर सिरिल हिंशेलवुड की बात याद आती है जो आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में किसी नई कक्षा के विद्यार्थियों को अपना पहला भाषण कुछ इस प्रकार से प्रारम्भ करते थे, "जो कुछ मैं तुम्हें बताता जा रहा हूँ, यथासम्भव वह उस विषय का आधुनिकतम ज्ञान होगा, आप उसका मनन करें परन्तु इस बात को कदापि चरम ज्ञान न मान लीजिए, इस पर जिज्ञासाओं से आप इसे अच्छी भाँति समझ पाएँगे और शायद ज्ञान की सीमा को अधिक आगे बढ़ा पाएँ।"

4/682, जवाहर नगर
जयपुर

विकिरणन से खाद्य पदार्थों का संरक्षण

दिलीप भाटिया

हमारे देश भारत में 25 से 30 प्रतिशत खाद्यान्न कई कारणों से नष्ट हो जाते हैं, इस नुकसान को निःसंदेह कम किया जा सकता है। खाद्य पदार्थों का संरक्षण एक चुनौती है। इस दिशा में एक सफल प्रयास के लिए विशिष्ट पद्धति है– विकिरणन से खाद्य पदार्थों का संरक्षण। खाद्य पदार्थों को विकिरणन पद्धति से अधिक समय तक सुरक्षित रखकर इन्हें अधिक उपयोगी एवम् लाभकारी बनाया जा सकता है, इस सम्बन्ध में कुछ वैज्ञानिक तथ्य इस प्रकार हैं :

1. विकिरणन से आलू एवम् प्याज का अंकुरण रोका जा सकता है। दाल, मसालों, गेहूँ, चावल को कीड़ों से बचाया जा सकता है। आम, केले, पपीते के पकने की क्रिया को धीमा कर उन्हें अधिक समय तक उपयोगी बनाया जा सकता है।

2. विकिरणित खाद्य पदार्थों को पकने में समय कम लगता है।

3. खाद्य पदार्थों की पौष्टिकता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होता है।

4. विकिरणन प्रक्रिया पर अनुमानित खर्च आलू एवम् प्याज के लिए 15 से 20 पैसे प्रति किलो एवम् मसालों के लिए डेढ़ से तीन रुपए प्रति किलो तक होता है।

5. परमाणु ऊर्जा विभाग के अंतर्गत मुम्बई के भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के खाद्य प्रौद्योगिकी विकास के संयंत्र में 500 किलो आलू और प्याज का विकिरणन प्रति घंटा करने की सुविधा है।

6. नया संयंत्र लगाने के लिए यह आवश्यक है कि आलू और प्याज की अपेक्षित मात्रा 50 हजार से 75 हजार टन प्रति वर्ष हो एवम् मसालों के लिए 25 हजार टन प्रति वर्ष हो, ऐसी हालत में ही नया संयंत्र लगाना अर्थसंगत होगा।

7. खाद्य विकिरणन संयंत्र की अनुमानित लागत 5 से 7 करोड़ रुपए होने का अनुमान है।

8. विश्व स्वास्थ्य संगठन एवम् अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी ने 10 किलो ग्रे (1000 किलो रेड) के लिए अनुमति प्रदान कर दी है।

9. 10 किलो ग्रे से अधिक विकिरण देने पर खाद्य असुरक्षित नहीं होगा, परन्तु रूप, रंग, गंध, स्वाद में अंतर पड़ सकता है। गर्मी के प्रकोप से अधिक पकने पर या तलने जैसी स्थिति हो सकती है।

10. अभी तक विश्व के 40 देशों ने इस प्रक्रिया के लिए अनुमति दे दी है एवम् 30 देश इसका उपयोग कर रहे हैं।

11. चीन इस दिशा में सबसे अग्रणी है।

12. भारत सरकार ने अगस्त 1994 में आलू, प्याज, एवम् मसालों के विकिरणन की अनुमति प्रदान कर दी है।

13. भारत में परमाणु ऊर्जा नियामक परिषद् को लाइसेंस, प्रशिक्षण एवम् निरीक्षण का पूर्ण अधिकार हो।

14. ब्रिट (बोर्ड आफ रेडियेशन एण्ड आइसोटोप) मसालों के विकिरणन के लिए 20 टन प्रति दिन क्षमता का संयंत्र शीघ्र लगाने जा रहा है।

15. भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र शीघ्र ही महाराष्ट्र के नासिक जिले के लासलगांव में प्याज के विकिरणन के लिए 10 टन प्रति घंटा क्षमता का संयंत्र लगाने वाला है, जिसकी स्थापना लागत 7 करोड़ रुपए आने का अनुमान है।

16. इस पद्धति वाले आलू प्याज को 6 महीने तक एवम् दालों मसालों को दो वर्ष तक सुरक्षित रखा

जा सकेगा। फलों को भी दो सप्ताह तक रखा जा सकेगा।

17. चीन, फ्रांस, दक्षिण अफ्रीका, नीदरलैंड, अमेरिका तथा बेल्जियम इत्यादि देशों में विकिरणन का प्रयोग किया जा रहा है।

18. कृषि में रासायनिक खाद्य की आवश्यकता कम होगी, इससे पर्यावरण पर अनुकूल प्रभाव होगा।

19. आलू एवम् प्याज के लिए– 0.15 किलो ग्रे (किलो रेड)

फलों के लिए– 0.5 किलो ग्रे (50 किलो रेड)

मसालों के लिए – किलो ग्रे (75 किलो रेड) विकिरणन डोज की आवश्यकता होती है, जो 10 किलो ग्रे की अनुपात मात्रा से शुरू होती है।

20. गामा किरणों की सहायता से टूर रेडियेटर संयंत्र में यह क्रिया की जाती है। यह भौतिक प्रक्रिया है।

हमारे देश के लिए खाद्यान्नों के भंडार का संरक्षण एवम् अधिकाधिक उपयोग निःसंदेह लाभकारी होगा। हम आशावान हैं कि भविष्य में हम विकिरणित खाद्य पदार्थों का उपयोग कर पाएंगे एवम् इस नई प्रक्रिया से हमारा देश भी लाभान्वित होगा।

राजस्थान परमाणु बिजली घर
अणुशक्ति कोटा-323303

बायोइनफार्मेटिक्स : एक बहुआयामी विषय

कहने को तो बायोइनफार्मेटिक्स का क्षेत्र बायोटेक्नोलॉजी का ही हिस्सा है पर इसमें कार्य व प्रक्रिया बिल्कुल भिन्न है। बायोइनफार्मेटिक्स जीव विज्ञान, कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी से मिलकर बना एक नया बहुआयामी विषय है। इसके अंतर्गत जैविक सूचनाओं जैसे न्यूक्लिक एसिड, आरएनए/डीएनए और प्रोटीन संरचना इत्यादि का कंप्यूटर की मदद से डाटाबेस तैयार किया जाता है। इस डाटाबेस का उपयोग सामान्य कोशिकीय क्रियाओं के व्यापक प्रस्तुतीकरण में किया जाता है ताकि शोधकर्ताओं को उनके विभिन्न अनुसंधानों में सहायता मिल सके। इन जैविक सूचनाओं का उपयोग रोग के लक्षण पहचानने तथा चिकित्सा में भी किया जाता है।

महत्व : यह सत्य है कि मानव तथा पशुओं के रोगों में एकदम समानता नहीं होती। फिर भी किसी पशु के रोग की जैविक सूचना के आधार पर शोधकर्ता मानव में उस रोग की प्रगति तथा उसकी रोकथाम के बारे में निष्कर्ष निकाल सकते हैं। इसी वजह से फार्मास्यूटिकल उद्योग की रुचि जीनोम अनुक्रमिक योजनाओं में बढ़ी है और यह बायोइनफार्मेटिक्स के बिना संभव नहीं है। यही वजह है कि आज विभिन्न फार्मास्यूटिकल कंपनियों, बायोटेक्नोलाजी तथा इससे संबंधित कई उद्योगों में बड़े–बड़े बायोइनफार्मेटिक्स रिसर्च एंड डेवलपमेंट डिवीजन स्थापित किए जा रहे हैं। फंक्शनल जीनोमिक्स, बाईमोलिकुलर संरचना, प्रोटीन संश्लेषण, सेल मेटाबोलिज्म जैवविविधता ड्रग डिजाइन, वैक्सीन डिजाइन इत्यादि कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ बायोइनफार्मेटिक्स एक अभिन्न अंग है।

अवसर : इस क्षेत्र में स्थापित होने के लिए व्यक्ति को जीव विज्ञान के साथ–साथ मल्टीमीडिया डेटाबेस, डेटा एनालिसिस के टूल्स, मालीक्यूलर माडलिंग, वेब इंटरफेस डिजाइन डेटा माइनिंग, यूनिक्स, वर्चुअल रिएलिटी सिस्टम तथा इंटरनेट का ज्ञान आवश्यक है। बायोइनफार्मेटिक्स वैज्ञानिकों की विश्व भर में खासी माँग है इसलिए इनके लिए किसी भी देश में रोजगार की कोई कमी नहीं है।

शिक्षण संस्थान : बायोइनफार्मेटिक्स शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थानों की संख्या अभी अधिक नहीं है। नेशनल बायोइनफार्मेटिक्स इंस्टीट्यूट देश के पहले कुछ संस्थानों में से एक है, जहाँ बायोइनफार्मेटिक्स में सर्टिफिकेट प्रोग्राम कराया जाता है। पुणे विश्वविद्यालय बायोइनफार्मेटिक्स में एमबीए पाठ्यक्रम संचालित करता है।

– साभार

मनुष्य व मशीन के संगम डॉ0 वारविक

संदीप निगम

महान वैज्ञानिक सर चार्ल्स डार्विन के विकासवाद की प्रक्रिया अब भी जारी है और इसका सबसे ताजा उदाहरण है ब्रिटेन की यूनिवर्सिटी आफ रीडिंग में साइबरनेटिक्स के प्रोफेसर डॉ0 केविन वारविक। इसी वर्ष मार्च माह में डॉ0 वारविक ने अपने ऊपर प्रयोग करके विश्व को चौका दिया। इस प्रयोग में दो घंटे लंबे आपरेशन द्वारा डाक्टरों ने उनकी बाईं बाँह में माइक्रोचिप के साथ एक मिनिएचराइज्ड कंप्यूटर इंप्लांट किया और इस कंप्यूटर से जुड़े 100 इलेक्ट्रोडों को उनकी मुख्य तंत्रिका से जोड़ दिया। ये इलेक्ट्रोड डा0 वारविक की बाईं बाँह से आने वाले तंत्रिका संकेतों को ग्रहण कर रेडियो ट्रांसमिशन द्वारा एक कंप्यूटर को भेज देते हैं। इस प्रकार मानव के तंत्रिका तंत्र को रेडियो तरंगों और इंटरनेट से जोड़ दिया गया। इस पूरी अवस्था का नियंत्रण उनकी बाईं कलाई पर बंधी एक कंप्यूटराइज्ड मशीन द्वारा किया जाता है। इस तरह डा0 वारविक, 'साइबोर्ग डा0 वारविक' में तब्दील जो गए।

साइबोर्ग है क्या ?

साइबोर्ग मनुष्य और मशीन का एकीकरण है। साइबोर्ग की परिकल्पना एक ऐसे मनुष्य के बारे में है जिसकी सभी शारीरिक क्रियाएँ किसी कंप्यूटर के माइक्रोचिप द्वारा क्रियान्वित की जाती हैं। साइंस फिक्शन लेखक आसिमोव ने अपनी कई पुस्तकों में साइबोर्ग और मानवों की ऐसी दुनिया का जिक्र किया है जिसका नियंत्रण 'इंटेलीजेंट मशीनों' के हाथ में है। डा0 केविन वारविक दुनिया के पहले साइबोर्ग मनुष्य और मशीन के संगम हैं।

हाल ही में दिल्ली आए डा0 वारविक ने ब्रिटिश काउंसिल के सभागार में करीब 200 लोगों की मौजूदगी में साइबोर्ग टेक्नोलाजी पर व्याख्यान दिया। उन्होंने इस अवसर पर अपनी पुस्तक 'आई साइबोर्ग' भी जारी की। डा0 वारविक ने बताया कि फिक्शन लेखक आसिमोव की परिकल्पना अब उनके लिए जीती–जागती सच्चाई है और इंटेलीजेंट मशीनों यानि रोबोट के प्रभुत्व वाले भविष्य से हम काफी दूर नहीं हैं। उन्होंने कहा कि प्रोफेसर स्टीफन हाकिंग्स की भविष्यवाणी के अनुसार साइबर वर्ल्ड की स्थिति आने में अभी 20 वर्ष का समय है लेकिन मेरा मानना है कि शुरुआत इससे पहले से हो जाएगी। साइबोर्ग तकनीक में मनुष्य के लिए अपार संभावनाएँ हैं। पाँच ज्ञानेंद्रियों का स्वामी मानव मशीनों के एकीकरण यानि साइबोर्ग बनने के बाद एक्स–रे, विजन, अल्ट्रासाउंड और इंफ्रारेड के इस्तेमाल से दुनिया पर राज करेगा। सामान्य मानव एक बार में केवल एक ही दिशा में सोच सकता है, जबकि साइबोर्ग मानव एकसाथ सैकड़ों दिशाओं में सोच सकेगा। सामान्य ज्ञानेन्द्रियाँ केवल पाँच हैं जबकि साइबोर्ग की ज्ञानेंद्रियाँ कई होंगी। डा0 वारविक कहते हैं कि "साइबोर्ग तकनीक के तहत हेल्थ इंप्लांट आपको हमेशा स्वस्थ रखेगा। इलेक्ट्रोड्स हमारे नर्वस सिस्टम को यांत्रिक बना देंगे। इसका सीधा असर यह होगा कि आप अपनी कई भावनाओं जैसे गुस्से पर काबू पा सकेंगे। पश्चिम में मैंने बच्चों में इंप्लांट की बहस छेड़ दी है जिसका सबसे बड़ा फायदा यह होगा कि अपहरण की स्थिति में कुछ ही सेकेंडों में पुलिस बच्चे को ढूँढ निकालेगी। इंप्लांट के बाद बच्चों की याददाश्त और गणित के प्रति रुचि भी कई गुना तक बढ़ जाएगी।" वे कहते हैं कि कितने शर्म की बात है कि हजार वर्षों से संपर्क के लिए हम एक ही उपाय यानि 'भाषा' को काम में ला रहे हैं। साइबोर्ग तकनीक में संपर्क के लिए भाषा

ब्रिटेन की यूनिवर्सिटी आफ रीडिंग में आर्टीफिशियल इंटेलीजेंस, कंट्रोल और रोबोटिक्स जैसे दुरूह विषयों पर कई महत्वपूर्ण शोध करने वाले साइबरनेटिक्स के प्रोफेसर डा0 केविन वारविक को मात्र 16 वर्ष की आयु में अपनी पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी थी। इसके बाद छह वर्षों तक वह ब्रिटिश टेलीकाम में मामूली नौकरी करते रहे। इस बीच उन्होंने अपनी पढ़ाई दोबारा शुरू की और 22 वर्ष की उम्र में एस्टन यूनिवर्सिटी से अपनी पहली डिग्री लेने में सफल रहे। इसके बाद इंपीरियल कालेज लंदन से उन्होंने पीएचडी की और वहाँ एक रिसर्च पोस्ट स्वीकार की। 32 वर्ष की आयु में रीडिंग विश्वविद्यालय में साइबरनेटिक्स विभागाध्यक्ष का पद संभालने से पहले वह आक्सफोर्ड, न्यूकैसल और वारविक विश्वविद्यालयों से भी जुड़े रहे। डा0 केविन के 300 से ज्यादा शोधपत्रों के अलावा दो पुस्तकें 'इन द माइंड आफ द मशीन' और 'आई साइबोर्ग' प्रकाशित हो चुकी हैं। इंपीरियल कालेज और चेक एकेडमी आफ साइंस दोनों उन्हें डाक्टरेट की मानद डिग्री से सम्मानित कर चुके हैं। 1999 में इंटरनेट रोबोट लर्निंग एक्सपीरियंस के कारण उन्हें गिनीज बुक आफ वर्ल्ड रिकार्ड में शामिल किया गया। 2000 में अपनी साइबोर्ग रिसर्च के कारण गिनीज बुक में एक बार फिर डा0 वारविक का नाम प्रकाशित हुआ। डा0 वारविक के साइबोर्ग बनने की शुरुआत 1998 में हुई जब अपनी बाईं बाँह में एक सिलिकॉन चिप ट्रांसपोंडर इंप्लांट कराकर उन्होंने साइंस की दुनिया में हलचल मचा दी। मार्च 2002 में मिनिएचराइज्ड कंप्यूटर व माइक्रोचिप को उसी बाँह में सर्जिकली इंप्लांट करने के साथ–साथ अपने तंत्रिका तंत्र को इस कंप्यूटर के 100 इलेक्ट्रोडों के साथ जोड़कर वह दुनिया के पहले साइबोर्ग बन गए। उन्होंने अपनी 52 वर्षीय पत्नी झरेना की बाँह में भी कंप्यूटर और इलेक्ट्रोडस इंप्लांट कराए हैं और अब वे अपनी अभिव्यक्तियों को टेलीपैथी के माध्यम से एक दूसरे से व्यक्त करते हैं।

की जरूरत नहीं रहेगी बल्कि टेलीपैथी मात्र विचारों की मदद से हम एक दूसरे से संपर्क करेंगे। साइबोर्ग तकनीक अपनाकर मात्र टेलीपैथी की मदद से कार ड्राइव करना भी संभव है। उदाहरण के तौर पर यदि हम अपने तंत्रिका तंत्र को एक मशीन से संबद्ध कर दें और वह मशीन कार ड्राइव करने में सक्षम हो तो हम मात्र विचारों की मदद से कार ड्राइव कर सकेंगे। विभिन्न वैज्ञानिकों और मीडिया की मौजूदगी में डा0 वारविक ने कई किलोमीटर दूर रखे एक रोबोट हाथ को टेलीपैथी के मदद से आपरेट कर हैरत में डाल दिया था। साइबोर्ग तकनीक के उपयोग के बारे में डा0 वारविक बताते हैं कि स्पाइनल इंजरी या अन्य कारणों से अपंग हो चुके लोगों और दृष्टिहीनों के लिए यह एक वरदान साबित हो सकती है। इस अवसर पर जारी अपनी पुस्तक 'आई साइबोर्ग' में डा0 वारविक कहते हैं "मैंने एक मानव के रूप में जन्म लिया लेकिन यह मेरे भाग्य का एक एक्सीडेंट था। इतनी खूबियों के बाद अब कौन मानव बना रहना चाहेगा।"

– साभार

देश में ही दुनिया का पहला 'ओवरी ट्रान्सप्लांट'

ज्योति भाई

हमारे देश में प्रतिभाओं की कोई कमी नहीं है। सीमित साधनों के बावजूद हमारे देश की प्रतिभाओं ने समय–समय पर असाधारण कार्य कर दिखाए हैं। इसी कड़ी में डॉ0 प्रवीण म्हात्रे ने दुनिया का पहला 'ओवरी ट्रान्सप्लांट' (डिम्बाशय प्रत्यारोपण) करके एक और चमत्कार जोड़ दिया है। ये मुम्बई के के.ई.एम. अस्पताल में सहायक प्रोफेसर और वाडिया हास्पिटल (मुम्बई) के एसोसिएट प्रोफेसर हैं।

धुन के पक्के डॉ0 म्हात्रे को ऐसे कई उदाहरण देखने को मिले कि जब किसी महिला की जन्मजात या अन्य कारणों से ओवरी या डिम्बाशय में गड़बड़ी आ जाती थी, जिसके कारण पूरी जिंदगी उन्हें मातृसुख से वंचित होना पड़ता था। उन्हें आजीवन एक विशेष प्रकार की त्रासदी झेलनी पड़ती थी। उनकी यह तड़पन अक्सर उन्हें झकझोर दिया करती थी। अतः उन्होंने इसी क्षेत्र में कार्य करने की ठानी। अन्ततः उनकी प्रवीणता और बुद्धि कौशल के कारण 29 मार्च 2002 का वह दिन भी आ गया, जब इस क्षेत्र में उन्हें चमत्कारिक सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने विश्व में चिकित्सा इतिहास में पहली बार 'ओवरी या डिंबाशय' का सफल प्रत्यारोपण कर विश्व के इतिहास में भारत का नाम दर्ज करा दिया।

शुक्रवार 29 मार्च 2002 को उन्होंने मुम्बई स्थित डी.एस. कोठारी अस्पताल में एक 17 वर्षीया किशोरी पर 'डिंबाशय प्रत्यारोपण' का सफल आपरेशन कर 'मेडिकल हिस्ट्री' में एक नया अध्याय जोड़ दिया है। यह किशोरी 'टर्नर्स सिंड्रोम' नामक बीमारी से पीड़ित थी। 'टर्नर्स सिंड्रोम' एक तरह की क्रोमोसोमल गड़बड़ी है। आमतौर से सामान्य लड़की में 46 गुणसूत्र (क्रोमोसोम्स) पाए जाते हैं जिसमें 44 आटोसोम्स या कायसूत्र होते हैं जिनका ताल्लुक शरीर के अन्य हिस्सों (लिंग को छोड़कर) से होता है जबकि 2 गुणसूत्रों का ताल्लुक लिंग से होता है।

'टर्नर्स सिंड्रोम' से पीड़ित लड़की में सिर्फ एक ही लिंग गुणसूत्र होता है। इस तरह की गड़बड़ी वाली लड़की में 'डिंब ग्रंथियाँ' तो होती हैं लेकिन वे सामान्य ढंग से काम नहीं कर पातीं। शरीर की सामान्य वृद्धि और लैंगिक विकास के लिए जरूरी कुछ हार्मोनों जैसे 'एस्ट्रोजेन' और 'प्रोजेस्ट्रेशन' का निर्माण नहीं हो पाता। 'डिंब ग्रन्थि' महिला प्रजनन अंग का एक प्रमुख अंग है। इसे ओवरी, डिंबाशय, अंडाशय या अंडादानी भी कहा जाता है। इसमें से ही अंडाणु परिपक्व होकर डिंबवाही नली (फैलोपियन ट्यूब) में आता है।

डॉ0 म्हात्रे के अनुसार 'ओवरी डोनर' (डिंबाशय दानदाता) की आदर्श उम्र 20–35 वर्ष तक मानी जाती है। पहला आपरेशन होने की वजह से इसमें साढ़े पाँच घंटे का वक्त लगा था, लेकिन अब आपरेशन में तकरीबन साढ़े तीन घंटे का ही वक्त लगा करेगा। दानदाता से निकाली गई 'ओवरी' को जल्द से जल्द 'ट्रांसप्लांट' कर देना चाहिए। वैसे काटकर निकाली गई ओवरी की कार्यक्षमता छः घंटों तक बरकरार रह सकती है।

कई कारणों से 'ओवरी' सम्बंधित समस्याएँ महिलाओं में पैदा हो जाती हैं। कुछ कारण जन्मजात होते हैं। कभी–कभी मेडिकल कारणों से भी ओवरी को निकलवाने की नौबत आ जाती है। 'एंडोमेट्रियोसिस' से ग्रसित महिला की भी ओवरी अकार्यक्षम हो जाती है। इसके अलावा टी0बी0 से ग्रस्त जानवरों का 'अनपाश्चुराइज्ड' दूध पीने से उन्हें 'बोवाइन टी0बी0, होने का खतरा रहता है। इस प्रकार की टी0बी0 से ग्रस्त महिलाओं की ओवरी भी अकार्यक्षम (निष्क्रिय) हो जाती है। इसके अलावा और भी अनेक कारणों से 'ओवरी' अकार्यक्षम हो जाती, जिन्हें कि अब आपरेशन द्वारा कार्यक्षम बनाया जा सकता है।

ग्रामोदय प्रकाशन, घूरपुर
इलाहाबाद–212110

बाल पत्रकारिता

डॉ0 पृथ्वी नाथ पाण्डेय

हिन्दी में बाल–पत्रकारिता का समारम्भ 1882 ई0 से आरम्भ होता है, जब इलाहाबाद में 'बाल–दर्पण' मासिकी का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह स्वतन्त्र रूप से बच्चों के लिए पत्रिका थी। वैसे तो कुछ विद्वान हिन्दी में बाल–पत्रकारिता के इतिहास का आरम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रकाशित 'बाल बोधिनी' पत्रिका से मानते हैं। 'बाल बोधिनी' का प्रथमांक 1 जून 1874 ई0 को काशी (उत्तर प्रदेश) से प्रकाशित हुआ। यदि 'बाल बोधिनी' के अंकों का अध्ययन किया जाय तो वह कहीं से बाल–पत्रिका नहीं लगती। इस दृष्टि से 'बाल दर्पण' (1882) को हिन्दी की पहली बाल–पत्रिका कहलाने का गौरव प्राप्त है।

एक समय था, जब बाल–पत्रिकाओं का ताँता लग गया था। 'बालहितकारक (1891, लखनऊ), आर्य बाल हितैषी (1902, इलाहाबाद), बाल प्रभाकर (1906, वाराणसी), विद्यार्थी (1910, इलाहाबाद), बाल हितैषी (1911, वाराणसी), छात्र हितैषी (1911, मेरठ), मॉनिटर (1912, नरसिंहपुर), बाल मनोरंजन (1914, आगरा), ब्रह्मचारी (1915, हरिद्वार), बालबोध (1915, वाराणसी), शिशु (1916, प्रयाग), बालसखा (1917, प्रयाग), छात्र सहोदर (1920, जबलपुर), उत्साह (1924, वाराणसी), वीर बालक (1924, दिल्ली), बालक (1926, पटना), खिलौना (1927, इलाहाबाद), बानर (1937, प्रयाग), अक्षय भैया (1934, इलाहाबाद), कमल (1934, लाहौर), बाल विनोद (1936, मुरादाबाद), किशोर (1938, पटना), होनहार (1944, लखनऊ), तितली (1946, प्रयाग), बालबोध (1947, प्रयाग), शेरबच्चा (1947, इलाहाबाद), बाल सन्देश (1947, दिल्ली), बाल भारती (1948, दिल्ली), लल्ला (1948, इलाहाबाद), प्रकाश (1948, पंजाब), मनमोहन (1949, इलाहाबाद), बच्चों का खिलौना (1948, अम्बाला), चन्दामामा (1949, मद्रास), चुन्नू मुन्नू (1950, पटना), नन्हीं दुनिया (1951, देहरादून), कन्या (1952, मन्दसौर), कलियाँ (1955, लखनऊ), बानर (1955, जयपुर), हम सब (1956, चम्पारन), जीवन शिक्षा (1957, वाराणसी), स्वतन्त्र बालक (1957, दिल्ली), भारत ज्योति (1957, जालन्धर), पराग (1958, मुम्बई), शोभा (1958, लुधियाना), नन्हे मुन्ने (1958, जालन्धर), कुक्कू (1958, अम्बाला कैण्ट), बाल कल्याण (1958, हरिद्वार), बाल सुमन (1958, मुम्बई), राजाबेटा (1958, वाराणसी), बालबन्धु (1958, मुरादाबाद), तितली (1959, दिल्ली), मीनू टीनू (1959, सिंहभूमि, बिहार), राजा भैया (1959, दिल्ली), बाललीला (1959, लुधियाना), बाल फुलवारी (1959, अमृतसर), बेसिक शिक्षा (1959, सहारनपुर), बालजीवन (1960, करनाल), विज्ञान लोक (1960,

बच्चों के लिए टेबुलायड ' न्यूज हाउस'

बड़े–बुजुर्गों को सुबह–सुबह अखबार पढ़ते देख बच्चों को भी लगता होगा कि काश उनका भी कोई अपना अखबार होता। अब बच्चों को कोई चिन्ता करने की बात नहीं है।

5 से 10 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को ध्यान में रखकर 12 पृष्ठों का एक टेबुलायड आकार का समाचार पत्र मुम्बई से जून, 1996 ई0 से आरम्भ किया गया। मुम्बई के व्यवसायी मोहिन्दर बंस ने इसे शुरू किया है।

इस समाचार पत्र के प्रथम अंक में बच्चों के लिए व्यंग्य चित्र, कहानियाँ, चुटकुलों के अतिरिक्त अनेक ज्ञानवर्द्धक जानकारी से युक्त विवरण तथा समाचार कथाएँ शामिल हैं।

मुम्बई के समुद्र तटों पर बच्चे ऊँटों की सवारी करते हैं, जिन ऊँटों के लिए समुद्र तटों पर घूमना कितना कष्टकारक है। इस पर एक फीचर भी है, जो बच्चों की मानसिकता बदलने का प्रयास करेगी। फ्रेंच ओपन टेनिस में प्रवेश के नियम आदि की भी जानकारी है इस समाचार पत्र में।

आगरा), बाल निकुंज (1960, कानपुर), सम्भल (1960, फैजाबाद), विश्व बाल कल्याण (1960, आजमगढ़), बेसिक बाल शिक्षा (1961, लखनऊ), बाल लोक (1961, अम्बाला सिटी), फुलवारी (1961, वाराणसी), मनोरंजन (1962, दिल्ली), बाल दुनिया (1962, दिल्ली), बाल वाटिका (1962, लखनऊ), ज्ञानभारती (1962, लखनऊ), रानी बिटिया (1963, वाराणसी), बाल उपहार (1963, जालन्धर सिटी), वैज्ञानिक बालक (1964, जयपुर), तरुण युग (1964, पंजाब), नंदन (1964, दिल्ली), शेरसखा (1964, कलकत्ता), शक्ति पुत्र (1965, दिल्ली), दीवान तेज (1965, दिल्ली), मिलिन्द (1965, नई दिल्ली), गुलबाल (1965, बरेली), जंगल (1965, इलाहाबाद), कन्या (मन्दसौर म0प्र0), अलीगढ़ के शिशु (1965, अलीगढ़), बाल जगत (1966, पटना), चमकते सितारे (1966, पटना), शिशुबन्धु (1966, लखनऊ), बाल आश्रम (1966, दिल्ली), बाल जगत (1967, लखनऊ), बच्चों का अखबार (1967, इन्दौर), छात्र हितैषी (1967, अजमेर), मनमोहन (1967, इलाहाबाद), बालकुंज (1968, लुधियाना), पूत सपूत (1968, दिल्ली), चम्पक (1968, दिल्ली), बच्चों की पुकार (1968, लखीमपुर खीरी), लोटपोट (1959, दिल्ली), चन्द्र खिलौना (1969, मुज़फ्फरनगर, बिहार), बाल रंगभूमि (1970, दिल्ली), मुन्ना (1970, दिल्ली), गोलगप्पा (1970, दिल्ली), नन्हीं कलियां (1971, दिल्ली), हंसती दुनिया (1971, दिल्ली), हिन्दी कॉमिक्स (1971, दिल्ली), महाबलि कॉमिक्स (1971, दिल्ली), नगराम (1972, दिल्ली), चमाचम (1972, लखनऊ), गुरुचेला (1973, दिल्ली), गुड़िया (1973, मद्रास), प्यारा बुलबुल (1974, जयपुर), शावक (1974, नई दिल्ली), बालेश (1975, नई दिल्ली), बाल रुचि (1975, लखनऊ), देव छाया (1975, जालन्धर छावनी), बालदर्शन (1975, कानपुर), शिशु रंग (1977, कानपुर), कलरव (1977, दिलली), आदर्श बाल सखा (1977, वाराणसी), ओ राजा (1977, इन्दौर), लल्लू पंजू (1977, लखनऊ), बाल पताका, (1978, मथुरा), मुस्कुराते फूल (1978, जयपुर), मधु मुस्कान (1979, दिल्ली), बाल कल्पना (1979, जालन्धर सिटी), मेला (1979, कलकत्ता), देवपुत्र (1979, ग्वालियर), रॉकेट (1980, अकोला, चित्तौड़गढ़), बाल मन (1980, नई दिल्ली), बाल रतन (1980, कानपुर), कुटकुट (1981, रतलाम, म0प्र0), नन्हे तारे (1981,चण्डीगढ़), नन्हीं मुस्कान (1981, कानपुर), नन्हें मुन्नों का अखबार (1981, इलाहाबाद), ट्विंकल (1981, मुम्बई), दि चिल्ड्रेन टाइम्स (1981, लखनऊ), बाल नगर (1982, इलाहाबाद), आनन्द दीप (1982, अहमदनगर), बाल दुनिया (1982, मुजफ्फरनगर), चन्दन (1982, नानापारा, बहराइच), लल्लू जगधर (1982, लखनऊ), किलकारी (1984, दिल्ली), उपवन (1984, सीकर, राजस्थान), चकमक (1985, भोपाल), अच्छे भैया (1986, इलाहाबाद), ये फूल धरती के (1986, मथुरा), बालहंस (1986, जयपुर), बालमंच (1987, दिल्ली), नन्हें सम्राट (1988, नई दिल्ली), किशोर लेखनी (1988, कटिहार बिहार), बाल मेला (1989, दिल्ली), समझ झरोखा (1989, भोपाल), यू.पी. नन्हा समाचार (1989, लखनऊ), पमपम (1992, दिल्ली), बालवाणी (1994, इलाहाबाद) बाल मित्र (1999, इलाहाबाद), विज्ञान आपके लिए (2001) आदि पत्र–पत्रिकाओं की उल्लेखनीय भूमिका रही है।

'Children's Literature of India' नामक अंग्रेजी भाषा की पुस्तक में प्रोवेश रंजन डे ने दैनिक पत्रों में प्रकाशित बाल स्तम्भ के नाम, उस स्तम्भ के सम्पादक और सम्बद्ध समाचारपत्र के प्रकाशन स्थान का उल्लेख किया है। कतिपय संशोधन के साथ उस सूची का अनुवाद यहाँ प्रस्तुत है।

दैनिक पत्र का नाम	स्तम्भ का नाम	सम्पादक का नाम	प्रकाशन स्थान
अमर उजाला	बच्चों का कोना	शोभा दीदी	बरेली
आज	बाल संसद	दादा	वाराणसी
भारत भूमि	बाल जगत	बीजे	ग्वालियर
बमबम	नन्हें मुन्नों का संसार	एम.एन. कुमार	कानपुर
दैनिक भास्कर	बाल भास्कर	विश्व मोहन माथुर	भोपाल
दैनिक जागरण	बाल जागरण	राजकुमार अनिलम	ग्वालियर

दैनिक जागरण	बाल जागरण	पृथ्वीनाथ पाण्डेय	रीवा–भोपाल
दैनिक निरंजन	बालवाड़ी	कु. किशोरी सक्सेना	ग्वालियर
दैनिक न्याय	न्याय बाल संसद	मनोहर वर्मा	अजमेर
दैनिक नवज्योति	बाल जगत	ओम प्रकाश शर्मा	जयपुर
दैनिक अर्जुन	बीरबल संवाद	बाल बन्धु	नई दिल्ली
दैनिक विश्वमित्र	बाल मण्डल	मोहन दादा	पटना
गाण्डीव	बाल सभा	राजीव कुमार अरोरा	वाराणसी
हिन्दुस्तान	बच्चों की दुनिया	दया शंकर मिश्र	नई दिल्ली
जागरण	बाल जागरण	दादा	इन्दौर
जागरण	बाल जगत	मोहन दादा	कानपुर
जागरण	बाल मण्डल	शरद दादा	भोपाल
लश्कर समाचार	बाल जगत	प्यारे लाल	लश्कर
लोकमत	बच्चों की दुनिया	आशा दीदी	बीकानेर
महाकौशल	बाल जगत	जय शंकर वर्मा	रायपुर
मध्य भारत प्रकाश	बाल भारती	भाषा शंकर वर्मा	ग्वालियर
नई दुनिया	बच्चों की दुनिया	शेखर भैया	इन्दौर
नई दुनिया	बच्चों की दुनिया	अनुराग भैया	रायपुर
नई दुनिया	नेहरू बाल मण्डल	चाचा राम	जबलपुर
नवभारत	नेहरू बाल मण्डल	चाचा राम	जबलपुर
नवभारत	हँसते खिलते सुमन	बादे भैया	जबलपुर
नवभारत	बच्चों की फुलवारी	गोविन्द लाल	रायपुर
नवभारत टाइम्स	नन्हें मुन्नों की बातें	शिवनारायण द्विवेदी	नागपुर
नवप्रभात	बाल भारत	अक्षय कुमार जैन	मुम्बई
नवभारत	किशोर प्रभात	मंजु नागोरी	ग्वालियर
प्रदीप	बच्चों की दुनिया	दीदी	पटना
प्रभात	शिशु संसार	सुबोध कुमार विनोक	मेरठ
पंजाब केसरी	बाल संघ	अशोक प्रेमी	जालन्धर
राष्ट्रदूत	बाल जगत	गजानन अग्रवाल	नागपुर
सैनिक	बाल सैनिक	राजाभाई	आगरा
स्वतन्त्र भारत	बाल संघ	दादू जी	लखनऊ
तरुण भारत	बाल स्तम्भ	नन्द किशोर श्रीवास्तव	लखनऊ
युगधर्म	बाल विहार	विमला शर्मा	नागपुर

पत्र–पत्रिकाओं में बाल साहित्य के प्रतिष्ठित रचनाधर्मियों में विजय नाथ देशा, मस्तराम कपूर, डॉ० बाल शौरि रेड्डी, लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय', कन्हैया लाल मत्त, चन्द्रपाल सिंह यादव 'मयंक', डॉ० हरिकृष्ण देवसरे, जय प्रकाश भारती, कन्हैया लाल नंदन, शंकर सुल्तानपुरी, रामानुज त्रिपाठी, प्रो. आर.पी. शुक्ल, डॉ० बानो सरताज, मानवती आर्या, शकुन्तला वर्मा, स्नेहलता पाठक, शकुन्तला परमार, निशा पाण्डेय, डॉ० कात्यायन, विनय लाल परमार, डॉ० भैंरु लाल गर्ग, इन्दिरा परमार, रमेश चन्द्र पन्त, डॉ० बृजेन्द्र वैद्य, डॉ० पृथ्वीनाथ पाण्डेय आदि प्रमुख हैं।

110, नई बस्ती अलोपी बाग, इलाहाबाद

आयोडीनयुक्त बनाम आयोडीनरहित नमक

डॉ0 हेमन्त पन्त

हमारे देश में लगभग सभी राज्यों के अधिकांश क्षेत्र आयोडीन की कमी वाले क्षेत्र हैं और इसीलिए शरीर में आयोडीन की कमी को पूरा करने के लिए उसे नमक के जरिए पहुँचाने की सरकार द्वारा नीति बनाई गई। कई वर्षों तक आयोडीनरहित नमक की बिक्री पर प्रतिबंध के बाद गत वर्ष केन्द्र सरकार द्वारा यह प्रतिबंध हटा लिया गया। हालाँकि अधिकांश राज्यों एवं विशेषज्ञों ने इस प्रतिबंध को उठाने का विरोध किया था पर केन्द्र सरकार ने निषेध कानून 1955 के खाद्य मिलावट के पी.एफ.ए. नियमों में संशोधन करते हुए आयोडीनरहित नमक की बिक्री के द्वार एक बार फिर खोल दिए। इस बहस में जाने से पहले एक नजर आयोडीन और उसकी उपयोगिता पर डाल लेते हैं।

आयोडीन एक तत्व है जो मनुष्य एवं पशुओं के शारीरिक एवं मानसिक विकास तथा स्वाभाविक वृद्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। विश्व का अधिकांश आयोडीन समुद्र में पाई जाती है। बरसात, बर्फ, ग्लेशियर आदि के द्वारा मिट्टी से आयोडीन कट कर नदी–नालों के माध्यम से बह जाता है। इसी कारण पूरे विश्व में पर्वतीय क्षेत्र आयोडीन की कमी से ग्रसित हैं। समुद्री पानी में लगभग 50 माइक्रोग्राम प्रति लीटर के दर से पाया जाता है और वायु में लगभग 0.7 माइक्रोग्राम प्रति घनमीटर की मात्रा। वायुमंडलीय आयोडीन बरसात के द्वारा 1.8 से 8.5 माइक्रोग्राम प्रति लीटर की दर से मिट्टी में पहुँच जाती है और आयोडीन चक्र पूरा होता है। परन्तु आयोडीन की कमी से ग्रस्त क्षेत्रों में आयोडीन की क्षति की तुलना में उसकी वापसी बहुत कम होती है जिससे वहाँ होने वाली फसलों में भी आयोडीन की मात्रा कम होती है और प्रतिदिन की शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए बाहर से आयोडीन लेना जरूरी हो जाता है।

मानव शरीर में औसतन 15 से 20 मिलीग्राम आयोडीन उपस्थित रहता है जिसका लगभग 80 प्रतिशल भाग थायराइड ग्रन्थि में मौजूद रहता है। सामान्य तौर पर हर रोज 100 से 150 माइक्रोग्राम आयोडीन की आवश्यकता होती है और इससे अधिक मात्रा वृक्कों (किडनी) के द्वारा मूत्र के साथ शरीर से बाहर विसर्जित कर दी जाती है। थायराइड ग्रन्थि में आयोडीन अकार्बनिक रूप में ऐमीनोएसिड, मोनोआयोडोटायरोसीन, डाइ–आयोडोटायरोसीन, थायरॉक्सीन, एवं ट्राइआयोडोथायारोनीन आदि में उपस्थित रहता है। यही हारमोन शारीरिक एवं मानसिक विकास में प्रमुख भूमिका अदा करते हैं।

यद्यपि आयोडीन की कमी से होने वाले घेंघा रोग (जिसमें थायराइड ग्रन्थि का आकार बढ़ जाता है,) के बारे में बहुत पहले से जानकारी थी, परन्तु इसकी कमी से होने वाले विकारों (आईडीडी) का खतरनाक रूप पिछले तीन–चार दशकों में सामने आया है। समस्या सिर्फ थायराइड ग्रन्थि के फूल जाने और गले के बड़े हो जाने जैसी साधारण नहीं है, बल्कि समस्या दिमागी और शरीरी विकास से जुड़ी हुई है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक आकलन के अनुसार पूरे विश्व में लगभग 1.4 अरब से अधिक लोगों में आईडीडी का खतरा है जिनमें लगभग 60 करोड़ लोग घेंघा रोग से पीड़ित हैं और लगभग 26 करोड़ मंदबुद्धि हैं। अकेले भारत में ही 16 करोड़ से अधिक लोगों में आईडीडी का खतरा है, 5 करोड़ 40 लाख घेंघा रोग से पीड़ित हैं तथा 22 लाख बौनेपन एवं 66 लाख मानसिक विकारों के शिकार हैं।

आयोडीन की आवश्यकता हर उम्र में होती है परन्तु गर्भवती स्त्रियों एवं बच्चों में आयोडीन की कमी अधिक घातक हो सकती है। आयोडीन की कमी वाले क्षेत्रों में, जहाँ महिला को गर्भावस्था के दौरान 24 माइक्रोग्राम आयोडीन प्रतिदिन से कम प्राप्त होता है, नवजात शिशु को बहुत खतरा हो सकता है। गर्भवती स्त्री में आयोडीन की कमी के कारण गर्भपात हो सकता है या मृत बच्चा पैदा हो सकता है। इसकी कमी से बच्चा कमजोर पैदा हो सकता है और नवजात में तन्त्रिका संबंधी विकृतियाँ हो सकती हैं जिसके कारण बच्चा मंदबुद्धि अथवा मूक-बधिर हो सकता है। इसके अलावा बच्चे में भेंगापन अथवा बौनापन भी हो सकता है। आयोडीन की कमी से नवजात शिशु में कभी ठीक न होने वाली दिमागी क्षति भी हो सकती है। आयोडीन की कमी को गर्भावस्था के दौरान ही दूर करके इन विकारों से बचा जा सकता है। भारत में आईडीडी से ग्रस्त नवजात शिशुओं की संख्या आयोडीन की कमी वाले क्षेत्रों में 6 से 130 प्रति 1000 पैदाईश आँकी गई है।

बड़े बच्चों में आयोडीन की कमी के कारण घेंघा रोग हो सकता है। स्कूल जाने वाले बच्चे पढ़ाई और खेलकूद में अपने साथियों से पिछड़ जाते हैं और उनका बौद्धिक स्तर भी बहुत कम हो जाता है। यदि इस उम्र में आयोडीन की सही मात्रा उपलब्ध कराई जाए तो थायराइड ग्रन्थि का आकार नियमित हो सकता है और बच्चे के बौद्धिक स्तर में भी सुधार आता देखा गया है। जहाँ नवजात शिशुओं में आयोडीन की कमी से होने वाले मानसिक विकास ठीक नहीं हो सकते, वहीं बड़े बच्चों में आयोडीन की सही मात्रा देने पर बौद्धिक स्तर और शारीरिक शक्ति और ऊर्जा में सुधार आ सकता है।

वयस्क मनुष्य में आयोडीन की कमी से घेंघा रोग हो जाता है एवं शारीरिक और मानसिक शक्ति घट जाती है। घेंघा रोग पुरुषों की तुलना में किशोरावस्था एवं उससे अधिक उम्र की महिलाओं में ज्यादा देखा गया है। इसका कारण किशोरावस्था के दौरान होने वाले विकास में आयोडीन चयापचय में अन्तर माना जाता है।

आयोडीन की कमी का प्रभाव पालतू पशुओं पर भी पड़ता है जिससे उनकी प्रजनन क्षमता और शारीरिक विकास में कमी आती है। पशुओं की कार्यक्षमता और उत्पादन क्षमता घट जाती है जिससे दूध और मांस का उत्पादन घट जाता है। मुर्गियों से अंडे और भेड़ों से ऊन भी कम प्राप्त होती है। आयोडीनयुक्त नमक द्वारा पशुओं में भी उल्लेखनीय सुधार देखा गया है।

केन्द्र तथा राज्य स्वास्थ्य निदेशालयों एवं अन्य सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा किए गए सर्वेक्षणों से पता चलता है कि हमारे देश का कोई भी राज्य आईडीडी की समस्या से अछूता नहीं है। एक अन्य आकलन के अनुसार भारतवर्ष में हर घंटे में 10 बच्चे आईडीडी से पीड़ित पैदा होते हैं और वे सामान्य शारीरिक विकास एवं मानसिक विकास प्राप्त नहीं कर पाते। दूसरी ओर प्राकृतिक आयोडीन का तेजी से क्षरण हो रहा है जिसके कारण यदि सही उपाय नहीं किए गए तो भविष्य में स्थिति विस्फोटक हो सकती है।

आईडीडी से बचाव, रोकथाम एवं इनके उन्मूलन के लिए नमक में आयोडीन की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध कराना सबसे आसान, सस्ता और सुलभ उपाय है। कई विकसित देशों द्वारा इस प्रकार के उपायों से दशकों पहले ही इस समस्या से छुटकारा पा लिया गया है। आयोडीनयुक्त नमक साधारण नमक की ही तरह होता है और इसके स्वाद, रंग और गंध में कोई अंतर नहीं होता है। इसकी लागत भी अधिक नहीं आती है और यह नमक निर्माण प्रक्रिया की कुल लागत की मात्र 2 प्रतिशत होती है।

भारत सरकार द्वारा 1962 में राष्ट्रीय घेंघा नियंत्रण कार्यक्रम शुरू किया गया था जिसका उद्देश्य घेंघा रोग नियंत्रण हेतु आयोडीनयुक्त नमक का वितरण करना था। इस कार्यक्रम को आशातीत सफलता नहीं मिलने पर समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा 1982-83 में भारतीय पोषण फाउंडेशन की स्थापना की गई। जाँच में जो तथ्य सामने आए उनमें जनता की अज्ञानता एवं राज्य प्रशासन तथा संस्थाओं द्वारा सहयोग की कमी प्रमुख थे। फाउंडेशन की सिफारिश पर नमक के निर्माण एवं बिक्री हेतु प्राइवेट सेक्टर की भागीदारी के दरवाजे खुल गए।

शेष पृष्ठ 46 पर ....

रमेश बेदी

सात साल की उम्र में मुझे गुरुकुल कांगड़ी युनिवर्सिटी में अन्तःवासी के रूप में विद्याध्ययन का सौभाग्य मिला था। चारों ओर नदी–नालों का जाल बिछा था। घने जंगलों में गूंजती हुई शेर की दहाड़ें मेरे कानों में गूँजती थीं। जंगल के राजा का मोहक सौन्दर्य देखने का कुतूहल पैदा होता था।

हर छुट्टी के दिन गुरुजन हमें जंगलों में घुमाने ले जाते थे। जलकुण्डों और नालों में रात को प्यास बुझाने आए जानवरों के पैर के निशानों से गीली धरती पटी होती थी। शेर के पंजों के निशान देखना आम बात थी। निशान गवाह थे कि इलाके का बड़ा शेर भी पानी पीने आया था।

मच्छरों से बचने के लिए कभी–कभी शेर रात के सन्नाटे में आश्रम के विस्तृत आंगन में आराम करने बैठ जाता था। अंधेरे में चमकते हुए दो विशाल गोलक मुझे इस खूबसूरत जीव का एहसास कराते थे। उसकी आँखों में कशिश थी, भय नहीं।

कुलपति स्वामी श्रद्धानन्द जी का बँगला गंगा तट पर एकान्त में था। गंगा के मझाड़े में शेर, तेंदुए, जंगली सुअर रहते थे। एक शिकार पर तेंदुए की दूसरे दावेदार से झड़प में तेंदुआ जख्मी हो गया। वह स्वामी जी के बँगले में शरण लेने आ गया।

शेर के हमले से बचकर एक साँभर आश्रम के परिसर में आ गया था। सारा आश्रम वन्य जीवों का अभयारण्य बना हुआ था।

यहाँ मैं चीतल की डारों में सौ–सौ हिरणों को कुलाँचें भरते देखता था। सांभर, पाढ़े, बारासिंगे–हिरणों की कई जातियाँ यहाँ मिल जाती थीं।

साँझ का झुटपुटा होते ही हमारे खेल के मैदान में तेंदुए आराम करने आ जाते थे। एक साँझ खेल खत्म करने में देर हो गई। मैदान में तेंदुए के आने का समय हो गया था। वह झाड़ियों के अन्दर छिपा खिलाड़ियों के जाने का इन्तजार कर रहा था। खेल खत्म करते हुए एक खिलाड़ी की हिट से गेंद मैदान के बाहर झाड़ियों में चली गई, जहाँ तेंदुआ बैठा हुआ था। जो खिलाड़ी गेंद लेने गया, तेंदुए ने उसकी टाँग पकड़ ली। दूसरे

खिलाड़ी उसे छुड़ाने गए। उन्होंने हाकियों से पीट–पीटकर तेंदुए को मार डाला।

जंगलों में सभी जगह हाथी आजाद विचरते थे। नदियों में लोट लगाते थे। बरसात में उफनती नदियों की बाढ़ में हाथी के नन्हे बच्चे बहकर आ जाते थे। एक बच्चे को हमने बाढ़ के पानी में डूबने से बचाया था।

बाढ़ का पानी उतर जाने पर एक मगरमच्छ नदी के सूखे पाट में बोल्डरों में अटक गया था। उसे हमने किसी तरह जलकुंड तक पहुँचाकर उसकी जान बचाई थी।

शिव की अलकों के समान फैली शिवालक पहाड़ियों की तलहटी में ऊँचे टीले पर बरगद का एक विशाल पेड़ खड़ा था। उसके विस्तृत वितान के नीचे हाथियों, हिरणों, जंगली सूअरों, शेरों और तेंदुओं के आने–जाने का सिलसिला बना रहता था।

उन्हें देखने के लिए हमने बरगद के ऊपर मचान बनाया। उसके ऊपर रात को दस जने आराम से सो सकते थे। यहाँ से हम अपने नीचे वन्य जीवों के क्रियाकलाप देखते थे। नाले में या जंगल में उठता हुआ साँभर का भित्ति–संकेत, शेर की दहाड़, हाथी की चिंघाड़– जंगल की इस सांकेतिक भाषा को यहाँ सीखा।

मैं अब भी तराई के उन जंगलों में जाता हूँ लेकिन हालात बदल गए हैं। जंगल काट डाले गए हैं, जानवरों को अन्धाधुन्ध मारा जा रहा है, शेर को अपने ही घर से बेघर कर दिया है, पोचर हाथ धोकर उसकी जान लेने को उतारू हैं। शेर की चमकती हुई खूबसूरत आँखें कहीं नजर नहीं आतीं और, पंजों के निशान भी नहीं।

जंगल की गिरती दशा और जानवरों का विनाश देखकर मुझे चिन्ता होती है। दुख होता है। उन्हें बचाने की कोशिशें की जा रही हैं। कानून भी बनाए गए हैं। उनकी अनदेखी की जा रही है। उन्हें सख्ती से लागू करना होगा। जंगल के इलाके में रहने वाले देहातियों को वन्य जीवों की उपादेयता के बारे में शिक्षित करना होगा। उनकी रक्षा करने में देहातियों का ही भला है।

इस बात को मैं एक दयनीय घटना से स्पष्ट करना चाहूँगा। तराई में अजगर साँप मिल जाते हैं। ये किसानों की फसलों के दुश्मनों– चूहों, खरगोशों, गीदड़ों और मृग छौनों– को खाने फसलों के अन्दर आ जाते हैं। लाल ढांग के बेदी कृषि फार्म में गन्नों ने पूरी लम्बाई प्राप्त कर ली थी। ऐसे गन्ने अपने सहारे खड़े नहीं हो पाते। उन्हें जमीन पर लिट जाने से बचाने के लिए बाँधने और उनके फालतू पत्तों को छांटने के काम पर चार देहाती दिहाड़ी पर काम कर रहे थे। एक सुबह फसल के अन्दर घुसने पर उन्होंने एक विशाल अजगर देखा। वह निष्क्रिय पड़ा था। उसका पेट फूला हुआ था। मजदूरों ने उस पर लाठियों की बौछार करनी शुरू की और मारकर ही दम लिया। उसके पेट में समूचा गीदड़ निकला। देहाती किसान नहीं जानते कि अजगर निर्विष भला साँप है। उसने गीदड़ को निगलकर फसल बचाने का काम किया है।

जंगलों और वन्य जीवों को बचाने की मुहिम में आम आदमी का सहयोग लेना होगा। शेर जंगल और वन्य जीवों का प्रतीक है। पाँच हजार साल पहले महर्षि वेदव्यास ने महसूस किया था :

शेर जंगल की रक्षा करते हैं, और
जंगल शेरों की रक्षा करता है।
शेरों के बिना जंगल जंगल नहीं है, और
जंगल के बिना शेर का जीवन व्यर्थ है।
न स्याद् वनमृते व्याघ्रान् व्याघ्रा न स्युर्ऋते वनम्।
वनं हि रक्ष्यते व्याघ्रैर्व्याघ्रान् रक्षति काननम्।।

–महाभारत, उद्योगपर्व, अध्याय 37;64

बेदी शोध संस्थान
डी 28, राजौरी गार्डन
नई दिल्ली–110027

पुस्तक समीक्षा

स्वतंत्रता परवर्ती हिन्दी विज्ञान लेखन
भाग–1 (1950–1970)

सम्पादक : डॉ0 शिवगोपाल मिश्र तथा डॉ0 विष्णु दत्त शर्मा

प्रकाशक : शोध प्रकाशन अकादमी, 5/48, वैशाली, गाजियाबाद (उ0प्र0)

मूल्य : 250 रुपये मात्र, **पृष्ठ संख्या :** 352

प्रकाशन वर्षः 2002

परतन्त्रता की बेड़ियों में सैकड़ों वर्षों तक जकड़े रहने के पश्चात् 1947 में जब भारत को आजादी मिली, मानवीय उपलब्धियों के अनन्त द्वार सहसा ही अनावृत हो उठे मानो सदियों से दबी, संकुचित मानवीय अभिव्यक्ति की इन्द्रधनुषी रश्मियाँ एकाएक झिलमिला उठी हों– भारतीय मानस ने चतुर्दिक और अहर्निश विकास के एक नए युग का अभिनन्दन किया। चाहे वह साहित्य या संस्कृति हो या फिर विज्ञान और प्रौद्योगिकी, चहुँ ओर विकास के नए प्रतिमान सृजित होने लगे। स्वतन्त्रता का यह वर्ष (1947) ही प्रगति के नए प्रतिमानों, विकास की नित नूतन कहानियों का प्रस्थान बिन्दु बन गया। कालान्तर में बुद्धिजीवियों में स्वतन्त्रता प्राप्ति के वर्ष को ही आधार मानते हुए विभिन्न क्षेत्रों में हुई प्रगति की समीक्षा/आकलन का प्रचलन प्रारंभ हो गया।

उपरोक्त पृष्ठभूमि में यह सहज और सर्वथा उचित ही था कि हिन्दी में स्वतन्त्रता के पश्चात् विज्ञान लेखन की व्याप्ति की पड़ताल भी की जाए– इसी महनीय उद्देश्य की पूर्ति को लक्षित एक प्रयास है– 'स्वतन्त्रता परवर्ती हिन्दी विज्ञान लेखन, भाग–1 पुस्तक का प्रकाशन जो 1950–70 के दो दशकीय कालखण्ड में हिन्दी विज्ञान लेखन, विशेषतया लोकप्रिय हिन्दी विज्ञान लेखन की प्रमुख प्रवृत्तियों से पाठक का साक्षात्कार कराती है। विद्वान सम्पादकद्वय ने इस दौर के प्रसिद्ध विज्ञान लेखकों की प्रतिनिधि/चुनिन्दा रचनाओं (कुल 59) को इस पुस्तक में संकलित करते हुए इस कालखण्ड (सर्वोत्थान काल–बकौल सम्पादक) में लोकप्रिय हिन्दी विज्ञान लेखन की दशा और दिशा की एक झलक प्रस्तुत की है। संकलित लेखों के पारायण से यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि विद्वान संपादकों ने इस काल को हिन्दी विज्ञान लेखक का 'सर्वोत्थान काल' क्यों कहा है। इस संग्रहणीय संदर्भ पुस्तक का प्रत्येक लेख लोकप्रिय विज्ञान लेखन के आधुनिक काल की आधारशिला सा प्रतीत होता है। निबन्ध शैली की अनेक रचनाएँ कालजयी बन पाठक के समक्ष प्रस्तुत होती हैं। चाहे वे अन्तरिक्ष की गहन गवेषणाओं से संबंधित हों या जीव जगत की जीवन्तता से जुड़े निबंध हों, संकलन के नामचीन हस्ताक्षरों की लेखनी–संस्पर्श से वे बहुपठनीय बन गए हैं। संग्रह के सभी निबन्ध परवर्ती/आधुनिक विज्ञान लेखन की दशा और दिशा तय करने में आज भी 'शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय' की भूमिका में प्रस्तुत दिखाई देते हैं।

सभी संकलित निबन्ध बेजोड़ हैं, कोई किसी से कम नहीं है– संकलनकर्ताओं के श्रम को नमन। आज के सक्रिय लेखकों अथवा नए विज्ञान लेखकों को इस संकलन के सभी निबन्धों को दत्तचित्त होकर पढ़ने और यथाअवसर पुनः पुनः पढ़ते रहने की प्रभावशाली पेशकश है यह पुस्तक।

उनसठ निबन्धों में यहाँ किसकी चर्चा की जाए और किसे छोड़ा जाए यह बड़ी दुविधा है। समीक्षक की निजी अभिरुचियों के आग्रह को मानें तो 'ईल के प्रवास गमन' की काव्यात्मक गाथा का आस्वादन जगपति चतुर्वेदी के निबन्ध 'जन्तुओं का देशाटन' में करना न भूलें। आज भी ईल मछली की प्रवास गाथा पर हिन्दी में ऐसी बेजोड़ प्रस्तुति उपलब्ध नहीं है। इसी तरह डॉ0 डी.एस. कोठारी के परमाणु विषयक लेख (पृष्ठ सं0 16 एवं 244) भाषा और शिल्प तथा प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से अमिट छाप छोड़ने वाले हैं।

संग्रह की सबसे बड़ी खूबी यह है कि विज्ञान

के विविध विषयों का प्रतिनिधित्व हो सके इस लिहाज से निबन्धों का चयन किया गया लगता है। भौतिकी, रसायन शास्त्र, ज्योतिष या अन्तरिक्ष विज्ञान, प्रकृति और जीव जन्तु, मानव स्वास्थ्य या फिर वनस्पतियों, जड़ी–बूटियों कहीं कुछ भी तो अछूता नहीं रह गया है। जड़ी बूटियों पर आर.एस. चोपड़ा और रामेश बेदी (सर्पगन्धा पृष्ठ 146) का लेख है तो जीवन की कुंडलिनी को जगाने का जिम्मा रमेश दत्त शर्मा ने संभाला है। विष्णु दत्त शर्मा ने 'इच्छानुसार वर्षा' का आह्वान किया है तो प्रेमानन्द चन्दोला कीटों की रंगीली दुनिया के साथ उपस्थित हैं। अणु परमाणु और इलेक्ट्रान की गुत्थियों की परत दर परत उघाड़ने में श्रवण कुमार तिवारी और जयन्त नार्लीकर दीखते हैं तो स्वास्थ्य चर्चा में लोक कहावतों के बहुश्रुत पाठ के साथ गौरी शंकर द्विवेदी अपनी उपस्थिति का भान कराते हैं। किमाधिकम ? सभी निबन्ध बहुत ही पठनीय हैं, स्मरणीय हैं।

संग्रह का पटाक्षेप डॉ0 शिवगोपाल मिश्र के प्रभावशाली लेख 'विज्ञान की लोकगम्यता' एवं एकाधिक अन्य निबंधों से हुआ है किन्तु अपने कथ्य आलोक में डॉ0 मिश्र का निबंध वस्तुतः विषय प्रवर्तक लेख है। लोकप्रिय विज्ञान लेखक के हेतु और औचित्य को परिभाषित करने में पूरी तरह समर्थ और सशक्त इस लेख को सदैव याद किया जाएगा।

पुस्तक का कलेवर अत्यन्त मनोहारी और प्रथम दृष्टि में ही आकर्षित करने वाला है। इस संदर्भ ग्रन्थ का मूल्य (रु0 250/–) सर्वथा उचित ही है। क्या पाठक, क्या लेखक सभी विज्ञान लेखनप्रेमियों के लिए यह पुस्तक समान हितकारी एक अनुपम भेंट है।

–डॉ0 अरविन्द मिश्र
'अभिनव'86 जे, मोहिले नगर,अल्लापुर, इलाहाबाद

पेड़ पौधों की रोचक दुनिया

लेखक : डॉ. आर.सी. श्रीवास्तव
प्रकाशक : किताब महल, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण : 2001, पृष्ठ : 112, मूल्य 170/–

प्रस्तुत पुस्तक एक ऐसे वनस्पति विज्ञानी द्वारा लिखी गई है जो देश की वनस्पति के सर्वेक्षण कार्य से जुड़ा हुआ है जिसने पेड़ पौधों के पास जाकर, उन्हें छूकर, पहचान कर संकलित किया है। अतः ऐसे व्यक्ति द्वारा यदि पेड़ पौधों की बहुरंगी दुनिया का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है तो वह अवश्य ही रोचक एवं साथ ही प्रामाणिक होगा।

पेड़–पौधों की रोचक दुनिया में 12 अध्याय हैं जिनमें से प्रथम तीन अध्यायों में पादप जगत का परिचय, वनस्पतियों से मानव सम्बन्ध तथा पेड़ पौधों का मानव समाज को योगदान का सूचनाप्रद वर्णन हुआ है। अगले अध्याय में पेड़ पौधों के 16 प्रकार के उपयोग वर्णित हैं जिनमें भूगर्भीय जल के सूचक, खनिज सम्पदा के सूचक तथा प्रदूषण सूचक पौधों की जानकारी आज के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण है। परिवार नियोजन तथा कैंसर निदान में पौधों की उपयोगिता मानव जगत के लिए वरदान सिद्ध हो रही है। अध्याय 5 में नौ जाने अनजाने पौधों का विवरण (सचित्र) है। इनमें से ब्रह्मकमल तथा कल्पतरु साहित्यप्रेमियों के लिए नवीन सूचना प्रदान करने वाले हैं। पता नहीं लेखक 'पारिजात' को क्यों भूल गया। अध्याय 6 में 13 अनोखे पौधों का वर्णन हुआ है जिनमें दिशासूचक तथा समय का महत्व जानने वाले पौधे विशेष आकर्षण उत्पन्न करने वाले हैं। अगले 6 अध्यायों में राष्ट्रीय वृक्ष एवं पुष्प, पादप जगत की विषकन्याएँ, पेड़ पौधों में अन्तर्जातीय विवाह रोचक हैं। अन्तिम अध्याय पादप संरक्षण पर है। पुस्तक के अन्त में सन्दर्भ तथा परिशिष्ट के अन्तर्गत उपयोगी सूचना है।

पुस्तक की लेखन शैली, भाषा का प्रवाह तथा विषय विवेचना के लिए कम से कम शब्दों में विचार की अभिव्यक्ति– इस पुस्तक के मुख्य गुण हैं। वनस्पति विषयक अनेकानेक पुस्तकों में इक्कीसवीं सदी की यह पहली पुस्तिका मार्गदर्शक बनेगी– ऐसा हमारा विचार है। पुस्तक का आवरण तथा छपाई सन्तोषजनक है।

लेखक तथा प्रकाशक दोनों बधाई के पात्र हैं। पुस्तक संग्रहणीय एवं पठनीय है।

तेजस्वी मन: महाशक्ति भारत की नींव

लेखक : डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम
अनुवाद : अरुण तिवारी
प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण : 2002, पृष्ठ : 128, मूल्य (पेपरबैक) 60 रु0

यह पुस्तक भारतरत्न, भारत के मिसाइल पुरुष तथा भारत के राष्ट्रपति डॉ0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम द्वारा लिखित Ignited Mind का हिन्दी रूपांतरण है। इसे हम 'अग्नि की उड़ान' की पूरक कड़ी कह सकते हैं। इसमें डॉ0 कलाम का मानवीय पक्ष उभर कर सामने आया है। उन्हें देश की युवाशक्ति, युवा प्रतिभा पर अटूट विश्वास है। उन्होंने अपने बचपन में जैसे सपने संजोये थे और जिस तरह वे इच्छाशक्ति के कारण फलीभूत हुए उसी के आधार पर विगत पाँच वर्षों से वे भारत के विभिन्न अंचलों में युवाओं से मिलकर उनके मन की थाह लेते रहे हैं।

इस पुस्तक में डॉ0 कलाम का दार्शनिक रूप भी मुखरित हुआ है। उन्हें एक ओर परिश्रम करने पर विश्वास है दूसरी ओर ईश्वर पर। पुस्तक भर में 11 ऐसे प्रश्नों के उत्तर मिलेंगे जो उनसे समय-समय पर छात्रों ने पूछे हैं। उन्होंने जिस सहज भाव से उनके उत्तर दिए हैं, उन्हें उसी रूप में अंकित करते हुए उन्हें रंचभर भी हिचक नहीं हुई।

सबसे मजेदार बात यह है कि यह पुस्तक स्नेहल ठक्कर नामक उस छात्रा को समर्पित है जिसने आणंद में 'हमारा दुश्मन कौन है ?' का उत्तर इस प्रकार दिया- गरीबी हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। इसी उत्तर पर डॉ0 कलाम न्यौछावर हो गए। उन्हें लगा कि देश के छात्र-छात्राओं में वह प्रतिभा, वह प्रज्ञा, वह तेजस्विता है कि वे देश की पतवार को थाम सकें।

देश के युवाओं को झकझोरने वाली यह पुस्तक बारम्बार पठनीय एवं संग्रहणीय है। प्रकाशक को ऐसी अनुपम प्रस्तुति के लिए बधाइयाँ।

बच्चों से (बीस से कम आयु के) प्रश्न

15 अक्टूबर 2000 को डॉ0 कलाम ने तीन सवाल पूछे :-

1. भारत पिछले पचास वर्षों से भी अधिक समय से एक विकासशील देश रहा है। आप युवा लड़का या लड़की होने के नाते इसे विकसित राष्ट्र बनाने के लिए क्या करेंगे ?

2. मैं भारत का गीत कब गा सकता हूँ ?

3. विभिन्न क्षेत्रों में समर्थ होने के बावजूद किसी भी विदेशी वस्तु को क्यों ज्यादा पसन्द करते हैं जबकि दूसरे देश अपनी सफलताओं का राग अलापते हैं।

अद्भुत कामना

❑ 'हे ईश्वर ! मेरे लोगों को पसीना बहाने के लिए प्रेरित करें। उनकी मेहनत से कई कई अग्नियाँ जन्म लें जो बुराई को नष्ट कर सकें। मेरे देश में शांति और समृद्धि लावें। मेरे देशवासी मिल-जुल कर रहें।

❑ हे ईश्वर ! मुझे भारत का गौरवान्वित नागरिक होने के नाते इसकी धूल में मिल जाने देना, ताकि मैं दोबारा जन्म लेकर इसी की यशोगाथा का आनंद ले सकूं।'

❑ 'विद्यार्थियों को अब भारत को एक विकसित राष्ट्र में बदलने के लिए कमर कस लेनी चाहिए। अपनी प्रज्ञा को प्रज्जवलित करें और बड़ी बातें सोचें।'

❑ जब कुछ दांव पर लगा होता है तभी मानव-मेधा प्रज्ज्वलित हो उठती है और उसकी काम करने की क्षमता कई गुना बढ़ जाती है। एक काम को चुन लेने के बाद व्यक्ति को उसमें डूब जाना चाहिए। आप सफल होंगे या असफल, यह जोखिम तो हमेशा रहेगा। (इसी पुस्तक से)

नई पत्रिका 'विज्ञान कथा'

जब भी विज्ञान विषयक कोई नई पत्रिका निकलती है तो मैं यह समझता हूँ कि हिन्दी में विज्ञान लेखन अधिकाधिक पुष्ट हो रहा है।

यूँ तो विज्ञान कथाएँ विगत 10 वर्षों से यत्रतत्र छपती रही हैं और कई विज्ञान कथा संकलन भी निकल चुके हैं किन्तु अभी तक विज्ञान कथाओं को समर्पित कोई पत्रिका नहीं थी। 'भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति फैजाबाद' के प्रयास से इक्कीसवीं सदी में यह सपना पूरा हुआ है। इसके लिए डॉ0 राजीव रंजन उपाध्याय साधुवाद के पात्र हैं जिनके सम्पादकत्व में 'विज्ञान कथा' त्रैमासिक सितम्बर–नवम्बर 2002 का पहला अंक प्रकाशित हुआ है।

इसमें 7 कथाएँ हैं जिनके लेखकों में से कुछ पुराने और कुछ नए हैं। इन कथाओं में कई कई समस्याओं का समाधान खोजा गया है। आशा है भविष्य में नए नए लेखक इसमें योगदान करेंगे और हिन्दी में विज्ञान कथाओं का भण्डार समृद्ध होगा। वे बंगला तथा मराठी में लिखी जा रही विज्ञान कथाओं से होड़ ले सकेंगी !

– डॉ0 शिवगोपाल मिश्र

पृष्ठ 40 का शेष ....

1986 में घेंघा नियंत्रण कार्यक्रम को 20 सूत्रीय कार्यक्रम में सम्मिलित किया गया एवं राज्य सरकारों को बगैर आयोडीन के नमक की बिक्री पर पूर्ण प्रतिबंध एवं निगरानी कक्ष स्थापित करने की सलाह दी गई। 1988 में कानून लागू करके नमक में आयोडीन की मात्रा निश्चित की गई जिसके अनुसार निर्माण के दौरान नमक में कम से कम 30 पी.पी.एम. आयोडीन होना चाहिए जो बिक्री पर कम से कम 15 पी.पी.एम. हो। 1989 में स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा 'मुस्कुराता सूरज' का निशान आयोडीनयुक्त नमक के लिए निश्चित किया गया जिससे जनता उसे आसानी से पहचान सके।

नमक के आयोडीनीकरण हेतु कच्चा आयोडीन सरकार द्वारा रजिस्टर्ड फर्मों के माध्यम से जापान, चिली, इण्डोनेशिया और हालैण्ड से आयात किया जाता है। यह कच्चा आयोडीन इन फर्मों द्वारा पोटैशियम आयोडेट के रूप में बदला जाता है और नमक निर्माताओं को उपलब्ध कराया जाता है। एक किलोग्राम पोटैशियम आयोडेट द्वारा 20 टन नमक को 50 पी.पी.एम. पर आयोडीनीकृत किया जाता है जिसकी लागत कुल नमक निर्माण की मात्र दो प्रतिशत होती है। हमारे देश में लगभग 850 इकाइयाँ नमक के आयोडीनीकरण का कार्य कर रही हैं। वर्ष 1983 के 3 लाख टन की तुलना में आयोडाइज्ड नमक का उत्पादन 1997 में 40 लाख टन हो गया था जिससे लगभग 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या आयोडाइज्ड नमक का उपयोग कर रही है।

हालाँकि सादे नमक की बिक्री पर लगे प्रतिबंध को हटाने के पक्षधर लोगों का मानना है कि आयोडीन नमक सिर्फ उन्हीं क्षेत्रों के लिए आवश्यक है जहां आयोडीन की कमी है परन्तु तथ्य हमारे सामने है कि देश का कोई भी राज्य इसकी कमी से अछूता नहीं है। इसके अलावा प्रतिबंध हटाने के पक्ष में सरकार का मत है कि व्यक्ति को छूट होनी चाहिए कि वह साधारण नमक खाना चाहता है अथवा आयोडीनकृत। परंतु यहाँ एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि देश की बहुसंख्य जनता अनपढ़ है तो क्या वह यह फैसला करने में सक्षम होगी कि उसके लिए कौन सा नमक सही है ? अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में मानव पोषण के अतिरिक्त प्रोफेसर डॉ0 उमेश कपिल की नजर में आयोडीनयुक्त नमक के एक समान वितरण से ही इस समस्या का उन्मूलन संभव है।

आयोडीनयुक्त नमक को सौ प्रतिशत जनता तक पहुँचाने के लिए सरकार को सस्ती दर पर यह नमक उपलब्ध कराना चाहिए। लघु नमक उत्पादकों को वित्तीय सहायता देकर इस उद्योग में टिके रहने का अवसर देना चाहिए। इसे साथ ही साथ जनता में जागृति बढ़ाकर इस प्रतिबंध को लागू रखना चाहिए और सादे नमक की बिक्री पर पूर्ण प्रतिबंध की दिशा में कार्य करना चाहिए।

124, शान्तिकुंज
अलवर–301001

परिषद् का पृष्ठ

विज्ञान के 'बाल विज्ञान लेखन विशेषांक' का लोकार्पण

आजकल बाल साहित्य में सृजनात्मकता नहीं आ रही है क्योंकि हम सभी एक छोटे वर्ग की ही सोचते हैं, बच्चों के पूरे समाज पर हमारी नजर नहीं होती। इसलिए जरूरी है कि आज लेखक का अपना दृष्टिकोण साफ होना चाहिए। यह बात बहुगुणा डिग्री कालेज, इलाहाबाद के वनस्पति विभाग के अध्यक्ष डा0 सुप्रभात मुखर्जी ने कही। डा0 मुखर्जी 14 नवम्बर 2002 को विज्ञान परिषद् प्रयाग के सभागार में परिषद् द्वारा प्रकाशित 'विज्ञान' के बाल विज्ञान लेखन विशेषांक के विमोचन अवसर पर विचार व्यक्त कर रहे थे।

डा0 मुखर्जी ने कहा कि आजकल पढ़ने का काम दूसरे दर्जे का माना जाता है जबकि बच्चों में विज्ञान के प्रति लोकप्रिय जानकारी किसी अच्छी विज्ञान पत्रिका से ही संभव है। विज्ञान लेखन के लिए जरूरी बच्चों को साथ लेकर सृजन किया जाए तो ज्यादा लाभदायक होगा। हमें आज यह तय करना पड़ेगा कि उन्हें हम किस प्रकार का नागरिक बनाना चाहते हैं।

उन्होंने कहा कि आज बच्चों पर इतना अधिक दबाव रहता है कि वे बाल साहित्य नहीं पढ़ पाते। बच्चों के बोझ को भी कम करना चाहिए। जिस प्रकार बच्चों की रुचि कामिक्स में अधिक होती है उसी से प्रेरणा लेकर ऐसा प्रयोग करना चाहिए कि बच्चों में बाल साहित्य के प्रति रुचि बढ़े।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि 'गाँव की नई आवाज' पत्रिका के संपादक विजय चितौरी ने 'विज्ञान' के विशेषांक का लोकार्पण किया। अपने उद्बोधन में उन्होंने कहा कितना भी बड़ा विद्वान हो बच्चों को समझाना बड़ा कठिन काम होता है। बाल साहित्य के सबसे अच्छे जज होते हैं बच्चे, जिन्हें साथ लेकर सृजन किया जाना चाहिए। उन्होंने चिन्ता व्यक्त की कि दिल्ली में रह रहे कुछ गिने चुने बाल साहित्यकारों का ही सम्मान होता है जबकि इस क्षेत्र में अनेकों लोग लगातार लिख रहे हैं। उनका कोई सम्मान नहीं होता। इन सब स्थितियों से उबरना होगा।

इस अवसर पर विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री डा0 शिवगोपाल मिश्र ने कहा कि विज्ञान पर बच्चों की पत्रिकाएँ बहुत कम निकलती हैं। 'विज्ञान' कभी भी बच्चों की पत्रिका नहीं रही इसलिए लेखकों को बच्चों को ध्यान में रखकर लिखना चाहिए। लेखकों को चाहिए कि वे इस पत्रिका के लिए व्यापक पैमाने पर सर्वेक्षण करें कि बच्चों को क्या चाहिए। तभी उस पर लिखें। अभी तक बच्चों की रुचियों का अध्ययन नहीं किया गया।

उन्होंने कहा कि लेखकों को विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करना चाहिए और उन्हें क्रमवार ज्ञान देना चाहिए। आज विद्यालयों में लोकप्रिय विज्ञान को नहीं पढ़ाया जाता इसलिए लेखकों को चाहिए कि वे दैनिक जीवन में उपयोगी विज्ञान से जुड़ी हुई चीजों को उभारें तभी सार्थक बाल विज्ञान लेखन हो सकता है। इस अवसर पर डा0 के.एन. उत्तम, डा0 पृथ्वीनाथ पाण्डेय तथा श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने भी अपने विचार प्रकट किए।

कार्यक्रम में डा0 पी.सी. जायसवाल, श्री उमेश शुक्ल, कु0 हेमलता पन्त, राजेश पाण्डेय, बलराम यादव, नरेन्द्र, चन्द्रभान सिंह आदि उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन देवव्रत द्विवेदी ने किया।

–देवव्रत द्विवेदी

'जल जीवन एवं समाज' संगोष्ठी आयोजित

जोधपुर। विज्ञान परिषद् प्रयाग की जोधपुर शाखा एवं स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एवं जयपुर, जोधपुर अंचल के संयुक्त तत्वावधान में देश की ज्वलंत जल समस्या पर विज्ञान संगोष्ठी दिनांक 23 सितम्बर 2002 को आयोजित की गई जिसमें लगभग सौ प्रतिभागियों ने भाग लिया। संगोष्ठी के मुख्य अतिथि डा0 एस.एन. मेडिकल कालेज के प्राचार्य एवं नियंत्रक प्रो0 डा0 पी. के. गुप्ता तथा विशिष्ट अतिथि प्रादेशिक सुदूर संवेदन केन्द्र के परियोजना निदेशक डा0 जे.आर. शर्मा थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एंड जयपुर के उप महाप्रबंधक श्री आर.पी. तायल ने की तथा तकनीकी सत्र का संचालन जोधपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति एवं जोधपुर शाखा के संरक्षक प्रो0 एम. एल. माथुर ने किया।

कार्यक्रम का शुभारंभ मुख्य अतिथि द्वारा दीप प्रज्ज्वलन से हुआ तथा शाखा के संयुक्त मंत्री श्री राकेश श्रीवास्तव ने सरस्वती वंदना की। सभापति इंजी0 के.एम.एल. माथुर ने पहले विज्ञान परिषद् प्रयाग तत्पश्चात् जोधपुर शाखा के बारे में बताया। विषय प्रवर्तन करते हुए शाखा के प्रधानमंत्री डा0 डी.डी. ओझा ने बताया कि जल विश्व का विलक्षण घटक है तथा यह प्रत्येक जीवधारी के लिए आवश्यक है। डा0 ओझा ने मानव शरीर के विभिन्न अंगों, वनस्पतियों, पशु–पक्षियों एवं सिंचाई कार्यों में जल की महत्ता पर प्रकाश डाला तथा पारंपरिक जल स्रोतों की दयनीय हो रही स्थिति पर चिन्ता व्यक्त की। उन्होंने संगोष्ठी के विषय 'जल, जीवन एवं समाज' पर जल संरक्षण एवं संचयन में समाज की जन भागीदारी की विशेषताओं को उजागर किया। डा0 जे.आर. शर्मा ने सुदूर संवेदन तकनीक की जल संसाधनों के अन्वेषण में भूमिका को दर्शाया।

काजरी के डा0 एम.ए. खान ने काजरी द्वारा निर्मित नाडी, कुंड एवं टांका के महत्व को समझाया तथा कम पानी में अधिक फसल उत्पादन की राह बताई। डा0 महेशचन्द्र बोहरा ने विभिन्न प्रकार की फसलों की सिंचाई पद्धतियों के बारे में जानकारी दी तथा बूँद–बूँद एवं फव्वारा सिंचाई के बारे में बताया। प्रो0 एम.एल. माथुर ने जल के ऊर्जा एवं औद्योगिक उत्पादन में हो रहे उपयोग के बारे में जानकारी दी। डा0 अचलेश्वर बोहरा ने जल की सूक्ष्मजैविकीय परीक्षा के महत्व एवं तत्संबंधित रोगों के बारे में बताया। डा0 डी.डी. ओझा ने मरुस्थलीय क्षेत्रों के भूजल में व्याप्त आपदा कारकों के स्तर, उनसे हो रहे रोग तथा घटते भूजल स्तर को रेखांकित किया। डा0 अनुराग सिंह ने विभिन्न प्रकार के जलजन्य रोगों के बारे में जानकारी दी तथा कुछ उपाय भी सुझाए। डा0 संजीवकुमार ने जलीय जीवों पर जल प्रदूषण के प्रभाव को बताया तथा डा0 आर.एन. भार्गव ने वन्य जीवों के स्वास्थ्य पर जल के प्रभाव के बारे में जानकारी दी।
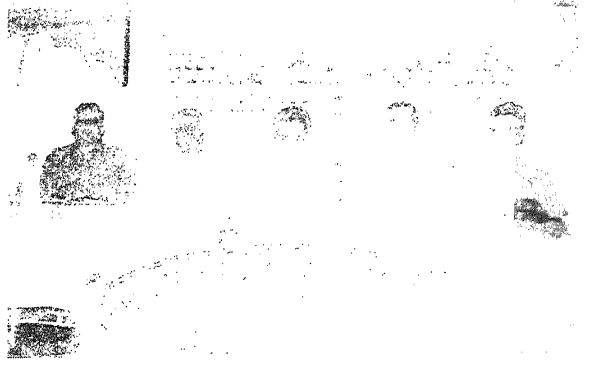
मुख्य अतिथि प्रो0 पी.के. गुप्ता ने अपने उद्बोधन में कहा कि आज विश्व भर में जल की त्रासदी है। अपर्याप्त वर्षा, दैनिक जीवन में जल अधिक उपभोग की प्रवृत्ति तथा प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन दुख के कारण हैं। आज हमें वेद एवं पुराणों से जल संचयन की शिक्षा लेनी चाहिए और समाज को इसके अपव्यय को रोकने में सहायता करनी चाहिए। अध्यक्ष श्री आर.पी. तायल ने जल शिक्षा पर बल दिया तथा संगोष्ठी की उपादेयता बताई। उपसभापति डा0 पी.के. भटनागर ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

डॉ0 दुर्गादत्त ओझा
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् (जोधपुर शाखा)

विज्ञान परिषद् प्रयाग
द्वारा आयोजित
अखिल भारतीय लेखन प्रतियोगिता 2003
ह्विटेकर पुरस्कार

1. लेख अथवा पुस्तक केवल विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
2. केवल प्रकाशित लेखों अथवा पुस्तकों पर ही विचार किया जाएगा।
3. लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
4. लेख अथवा पुस्तक के प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
5. इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख अथवा पुस्तक जनवरी 2002 से दिसम्बर 2002 माह के बीच प्रकाशित हो।
6. लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख अथवा पुस्तक मौलिक है।
7. विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
8. इस वर्ष के पुरस्कार के लिए प्रविष्टि भेजने की अन्तिम तिथि 31 मार्च 2003 है।
9. पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागी को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जाएगा।

पुरस्कार की राशि एक हजार रुपये है।

प्रविष्टियाँ निम्न पते पर भेजें :

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद
फोन नं0 : (0532) 460001

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से :

1. रचनायें टंकित रूप में सुलेख रूप में कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफ़ाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न–स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से :

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से :

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन दरें निम्नवत् हैं :–
भीतरी पृष्ठ पूरा 1000 रु0, आधा पृष्ठ 500 रु0, चौथाई पृष्ठ 250 रु0
आवरण द्वितीय तथा तृतीय 2500 रु0, आवरण चतुर्थ 4000 रु0

भेजने का पता :

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद
फोन नं0 : (0532) 460001
ई–मेल : vigyan1@sancharnet.in
वेबसाइट : www.webvigyan.com

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा–विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

मानव कल्याण में जैव प्रौद्योगिकी की भूमिका

वैज्ञानिकों ने इक्कीसवीं शताब्दी में जैव प्रौद्योगिकी का वर्चस्व होने की भविष्यवाणी की है। जैव प्रौद्योगिकी में जैविक कारकों या अवयवों के उपयोग से मानव उपयोगी उत्पादों/सेवाओं का सृजन किया जाता है। वैसे जैव प्रौद्योगिकी का प्रयोग बहुत ही प्राचीन काल से किया जा रहा है— जैसे दही, सिरका, खमीर में। तब उन्हें क्या पता था कि वे अनजाने में विज्ञान की एक नई विधा को जन्म दे रहे हैं, जो अब जैव प्रौद्योगिकी के रूप में एक नई दिशा की ओर अग्रसर हो रही है। इस प्रौद्योगिकी के कई साधारण उदाहरण हमारे सामने हैं, जैसे दही जमने में लैक्टोबैसिलस जीवाणु तथा खमीर उठाने में यीस्ट नामक सूक्ष्म जीव का उपयोग होता है। शराब बनाने के लिए खमीर का उपयोग, डबल रोटी बनाने के लिए खमीर का उपयोग, सूक्ष्मजीवों की सहायता से सीवेज का उपचार, जीवाणु के उपयोग से ऐसिटोन, ग्लिसराल, ब्युटेनाल का बड़े पैमाने पर उत्पादन हो रहा है। 1944 में पेनिसिलीन की खोज मानव जाति के कल्याण के लिए सबसे हितकारी रही है। यह जैव प्रौद्योगिकी की सबसे बड़ी सफलता मानी जाती है। इसके अलावा स्ट्रेप्टोमाइसिन, एरिथ्रोमाइसिन का भी सफलतापूर्वक प्रयोग मानव हित में किया जाता है। कृषि के क्षेत्र में जैव प्रौद्योगिकी के माध्यम से खरपतवारों, रोग व नाशीकीटों आदि का जैव नियंत्रण फफूँदी, विषाणु, जीवाणु, सूत्रकृमि आदि के उपयोग से सफलतापूर्वक किया जा रहा है। जैव उर्वरकों में राइजोबियम बैक्टीरिया, नीलहरित शैवाल एवं एजोला का प्रयोग करके फसलों में अधिकाधिक उपज ली जा रही है। जीन अभियांत्रिकी द्वारा कीटरोधिता, जीवाणुरोधिता खरपतवार नाशी रोधिता के लिए जीनों को पौधों में स्थानान्तरण द्वारा फसलों में रोगों को लगने से बचाया जा रहा है। ऊतक संवर्धन के द्वारा कम समय में अधिकाधिक पौधे उगाए जा सकते हैं, साथ ही साथ मनचाहे रंगों के फूल, फल एवं सब्जियाँ प्राप्त की जा सकती हैं जो प्रकृति ने हमें नहीं दी हैं।

जैव प्रौद्योगिकी ने पशुओं की नई नस्ल विकसित करने में, नस्ल सुधार में तथा पशुओं के स्वास्थ्य में विशेष योगदान दिया है। शारीरिक क्रिया प्रणाली में सुधार तथा जीन प्रत्यारोपण प्रणाली प्रमुख पद्धतियाँ हैं। जन्तुओं में भ्रूण हस्तांतरण, पोषण, स्वास्थ्य,